Drishti IAS Presents...

PT SPRINT 2022

शासन व्यवस्था

(जनवरी 2021 – मार्च 2022)

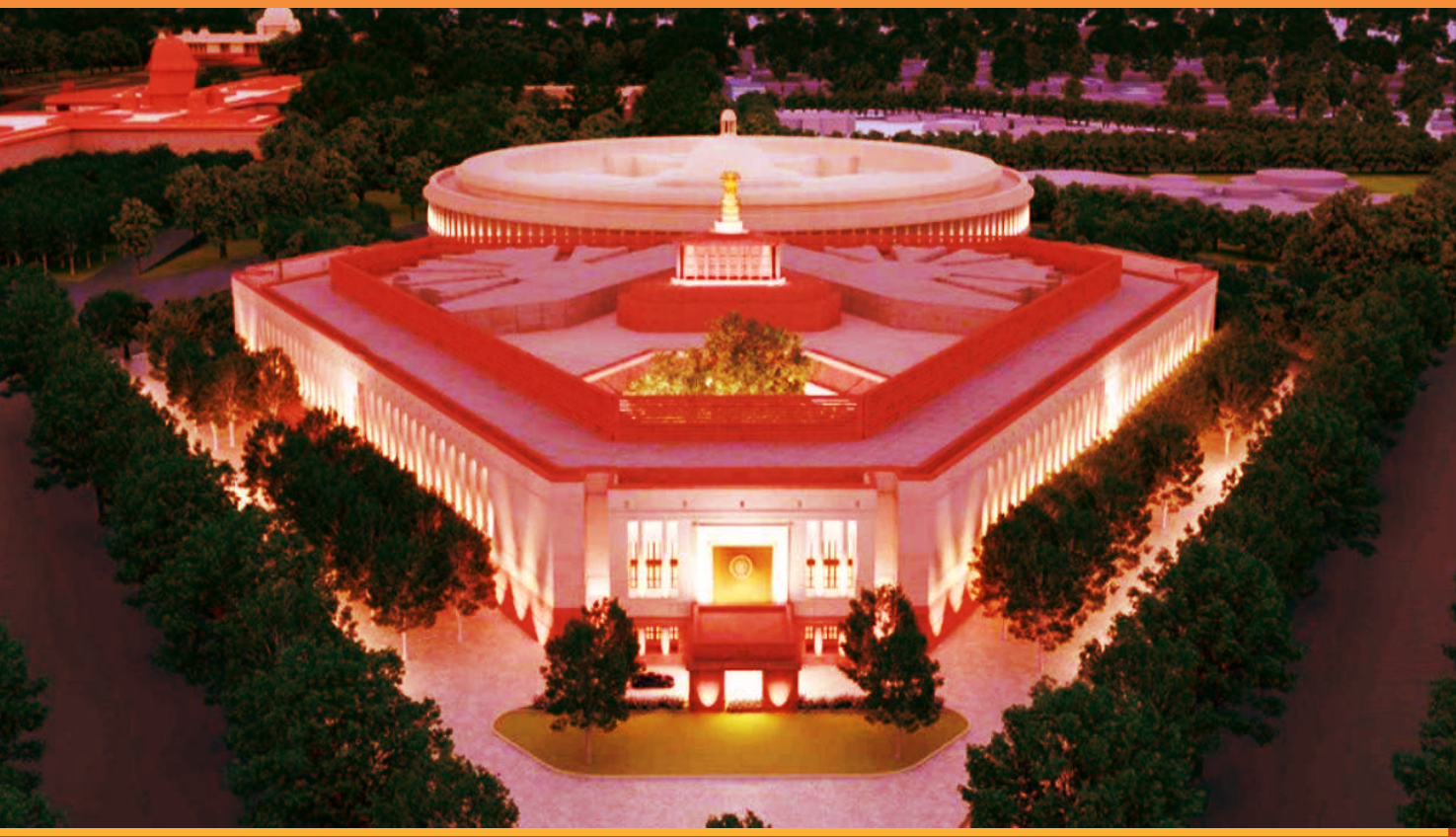

Drishti IAS, 641, Mukherjee Nagar, Opp. Signature View Apartment, New Delhi

Drishti IAS, 21 Pusa Road, Karol Bagh New Delhi - 05

Drishti IAS, Tashkent Marg, Civil Lines, Prayagraj, Uttar Pradesh

Drishti IAS, Tonk Road, Vasundhra Colony, Jaipur, Rajasthan

e-mail: englishsupport@groupdrishti.com, Website: www.drishtiias.com

Contact: 011430665089, 7669806814, 8010440440

अनुक्रम

शासन व्यवस्था 3

- मौलिक कर्त्तव्यों को लागू करना 3
- हिजाब और धर्म की स्वतंत्रता 4
- सार्वजनिक व्यवस्था 5
- विरोध का अधिकार 6
- सरकारी सहायता मौलिक अधिकार नहीं: SC 7
- निवास और अबाध संचरण का अधिकार 7
- निवारक निरोध पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय 8
- समान नागरिक संहिता 10
- निजता का अधिकार 11
- भूल जाने का अधिकार 12
- प्रतिष्ठा का अधिकार बनाम गरिमा का अधिकार 13
- निशुल्क कानूनी सहायता 14
- लोक अदालत 15
- धर्मांतरण विरोधी विधेयक का मसौदा: हरियाणा 17
- राज्यपाल की भूमिका और शक्ति 18
- विश्वविद्यालयों में राज्यपाल की भूमिका 19
- मुख्यमंत्री 22
- संघ' या 'केंद्र' सरकार 23
- असम-मेघालय सीमा विवाद 26
- कृष्णा जल विवाद 27
- पुद्दुचेरी द्वारा राज्य के दर्जे की मांग 28
- बेलागवी सीमा विवाद 29
- लद्दाख को छठी अनुसूची में शामिल करने की मांग 30
- 'विशेष श्रेणी राज्य' का दर्जा 31
- ई-आईएलपी प्लेटफॉर्म : मणिपुर 31
- विधान परिषद 32
- राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस 34
- निजी सदस्य विधेयक 37
- विशेषाधिकार प्रस्ताव 38
- डिप्टी स्पीकर चुनाव 39
- दलबदल कानून 40
- संसदीय सत्र 42
- मंत्रिपरिषद 42
- भारत का महान्यायवादी 43
- CBI निदेशक की नियुक्ति 44
- अमेरिकी राष्ट्रपति पर महाभियोग 45
- अनुदान की अनुपूरक मांग 46
- अनुदान की अनुपूरक मांग 47
- विनियोग विधेयक 47
- न्यायतंत्र आभासी न्यायालय 49
- न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये कॉलेजियम प्रणाली 49
- विधायकों का निलंबन 51
- भारत में न्यायालयों की भाषा 53
- एससी/एसटी एक्ट: सर्वोच्च न्यायालय 54
- न्यायालय की अवमानना 55
- केंद्रीय सूचना आयोग (CIC) 56
- न्यायिक समीक्षा 57
- विविध 58
- शीतकालीन सत्र 2021 59
- पहला ऑडिट दिवस : कैग 61
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग 62
- चुनाव चिह्न 63
- मत की गोपनीयता 63
- लोकपाल के लिये जाँच निदेशक 64
- चुनावी ट्रस्ट योजना, 2013 65
- मुख्य निर्वाचन आयुक्त 66
- केंद्रीय सतर्कता आयोग 68

शासन व्यवस्था

मौलिक कर्त्तव्यों को लागू करना

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यापक, अच्छी तरह से परिभाषित कानूनों के माध्यम से देशभक्ति और राष्ट्र की एकता सहित नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों को लागू करने के लिये एक याचिका का जवाब देने हेतु केंद्र और राज्यों को नोटिस जारी किया।

- मौलिक कर्त्तव्यों को संविधान के अनुच्छेद 51A (भाग IVA) के तहत निर्दिष्ट किया गया है, ये देश के आदर्शों को बनाए रखने और इसके विकास में योगदान करने का प्रयास करते हैं।

मौलिक कर्त्तव्य:

- मौलिक कर्तव्यों का विचार रूस के संविधान (तत्कालीन सोवियत संघ) से प्रेरित है।
- इन्हें 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों पर संविधान के भाग IV-A में शामिल किया गया था।
- मूल रूप से मौलिक कर्त्तव्यों की संख्या 10 थी, बाद में 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 के माध्यम से एक और कर्तव्य जोड़ा गया था।
- राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों की तरह, मौलिक कर्तव्य भी प्रकृति में गैर-न्यायिक हैं।
- मौलिक कर्त्तव्यों की सूची:
  - संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज एवं राष्ट्रीय गान का आदर करें।
  - स्वतंत्रता के लिये राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोये रखें और उनका पालन करें।
  - भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें तथा उसे अक्षुण्ण रखें।
  - देश की रक्षा करें और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।
  - भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करें जो धर्म, भाषा व प्रदेश या वर्ग आधारित सभी प्रकार के भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।
  - हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझें और उसका परिरक्षण करें।
  - प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव आते हैं, की रक्षा और संवर्द्धन करें तथा प्राणीमात्र के लिये दया भाव रखें।
  - वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
  - सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें।
  - व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करें जिससे राष्ट्र प्रगति की और निरंतर बढ़ते हुए उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।
  - छह से चौदह वर्ष की आयु के बीच के अपने बच्चे को शिक्षा के अवसर प्रदान करना (86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़ा गया)।

मौलिक कर्तव्यों का महत्त्व

- अधिकार और कर्तव्य परस्पर संबंधित हैं।
  - मौलिक कर्तव्य देश के नागरिकों के लिये एक प्रकार से सचेतक का कार्य करते हैं, यद्यपि संविधान ने उन्हें विशेष रूप से कुछ मौलिक अधिकार प्रदान किये हैं, इसके लिये नागरिकों को लोकतांत्रिक आचरण एवं लोकतांत्रिक व्यवहार के बुनियादी मानदंडों का पालन करने की भी आवश्यकता है।
- जो राष्ट्र का अपमान करते हैं, उन लोगों की असामाजिक गतिविधियों जैसे- झंडा जलाना, सार्वजनिक संपत्ति को नष्ट करना या सार्वजनिक शांति भंग करना आदि के खिलाफ ये कर्तव्य चेतावनी के रूप में काम करते हैं।
- ये अनुशासन और राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता की भावना को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। ये केवल दर्शकों के बजाय नागरिकों की सक्रिय भागीदारी से राष्ट्रीय लक्ष्यों को साकार करने में मदद करते हैं।
- ये कानून की संवैधानिकता का निर्धारण करने में न्यायालय की सहायता करते हैं। उदाहरण के लिये विधायिकाओं द्वारा पारित कोई भी कानून, जब कानून की संवैधानिक वैधता के लिये न्यायालय में ले जाया जाता है और यदि वह किसी मौलिक कर्तव्य को बढ़ावा दे रहा है, तो ऐसे कानून को उचित माना जाएगा।

मौलिक कर्तव्यों को कानूनी रूप से लागू करने की आवश्यकता:

- प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में शास्त्रों के अनुसार व्यक्ति के 'कार्तव्य' पर बल दिया जाता रहा है।
  - ये शास्त्र समाज, देश और विशेष रूप से अपने माता-पिता के प्रति कर्तव्यों पर बल देते हैं।
- गीता और रामायण लोगों को अपने अधिकारों की परवाह किये बिना कर्तव्यों का पालन करने का आदेश देते हैं।
- तत्कालीन सोवियत संघ के संविधान में अधिकारों और कर्तव्यों को समान स्तर पर रखा गया था।
  - कम-से-कम कुछ मौलिक कर्तव्यों को कानूनी रूप से लागू करने की तत्काल आवश्यकता है।
  - उदाहरण के लिये भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता को बनाए रखने तथा भारत की रक्षा, राष्ट्रवाद की भावना का प्रसार करने तथा भारत की एकता को बनाए रखने के लिये देशभक्ति की भावना को बढ़ावा देने संबंधी मौलिक कर्तव्य।
  - चीन के एक महाशक्ति के रूप में उभरने के बाद ये मौलिक कर्तव्य और भी महत्त्वपूर्ण हो गए हैं।
- नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों पर वर्मा समिति (1999) ने कुछ मौलिक कर्तव्यों के कार्यान्वयन हेतु कानूनी प्रावधानों का समर्थन किया। समिति द्वारा प्रस्तावित कुछ प्रावधान निम्नलिखित हैं:
  - राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 के तहत कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय ध्वज, भारत के संविधान और राष्ट्रगान का अनादर नहीं कर सकता है।
  - नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम (1955) जाति और धर्म से संबंधित किसी भी अपराध के मामले में दंड का प्रावधान करता है।
- याचिका में तर्क दिया गया था कि मौलिक कर्तव्यों का पालन न करने पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता) 19 (भाषण की स्वतंत्रता के संबंध में कुछ अधिकारों का संरक्षण) और 21 (जीवन का अधिकार) के तहत प्रदान किये गए गारंटीकृत मौलिक अधिकारों पर सीधा असर पड़ता है।
  - उदाहरण के लिये भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आड़ में प्रदर्शनकारियों द्वारा विरोध की नई अवैध प्रवृत्ति के कारण मौलिक कर्तव्यों को लागू करने की आवश्यकता को महसूस किया जाता है।

मौलिक कर्तव्यों पर सर्वोच्च न्यायालय का रुख:

- रंगनाथ मिश्रा निर्णय (2003) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मौलिक कर्तव्यों को न केवल कानूनी प्रतिबंधों से बल्कि सामाजिक प्रतिबंधों द्वारा भी लागू किया जाना चाहिये।
- एम्स छात्र संघ बनाम एम्स मामले (2001) में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि मौलिक कर्तव्य मौलिक अधिकारों की तरह समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।
  - हालाँकि मौलिक कर्तव्यों को मौलिक अधिकारों की तरह लागू नहीं किया जा सकता है लेकिन उन्हें भाग IV A में कर्तव्यों के रूप में नज़रअंदाज भी नहीं किया जा सकता है।

हिजाब और धर्म की स्वतंत्रता

चर्चा में क्यों?

हाल ही में कर्नाटक के उडुपी ज़िले के एक कॉलेज में हिजाब (कुछ मुस्लिम महिलाओं द्वारा सार्वजनिक रूप से पहना जाने वाला वस्त्र) पहनकर आने वाली छह छात्रों को कॉलेज में प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था।

- यह मुद्दा धर्म की स्वतंत्रता पर कानूनी सवाल उठाता है कि क्या हिजाब पहनने का अधिकार संवैधानिक रूप से संरक्षित है।

संविधान के तहत धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा:

- संविधान का अनुच्छेद 25 (1) 'अंत:करण की स्वतंत्रता और धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता के अधिकार' की गारंटी देता है।
- यह अधिकार स्वतंत्रता की नकारात्मक अवधारणा की गारंटी देता है- जिसका अर्थ है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि इस स्वतंत्रता का प्रयोग करने में कोई हस्तक्षेप या बाधा उत्पन्न न हो।
  - हालाँकि सभी मौलिक अधिकारों की तरह राज्य सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य और अन्य राज्य के हितों के आधार पर अधिकार को प्रतिबंधित कर सकता है।
- इसके निहितार्थ हैं:
  - अंत:करण की स्वतंत्रता: अंत:करण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता।
  - धर्म को मानने का अधिकार: अपने धार्मिक विश्वास और आस्था की सार्वजनिक और बिना भय के घोषणा करने का अधिकार।
  - आचरण का अधिकार: धार्मिक पूजा, अनुष्ठान, समारोह और विश्वासों तथा विचारों का प्रदर्शन करने का अधिकार।
  - प्रचार करने का अधिकार: किसी के धार्मिक विश्वासों को दूसरों तक पहुँचाना या प्रसारित करना या किसी के धर्म के सिद्धांतों की व्याख्या करना।

आवश्यक धार्मिक आचरण का परीक्षण:

- वर्षों से सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित करने के लिये एक व्यावहारिक परीक्षण प्रक्रिया विकसित की है कि कौन सी धार्मिक प्रथाओं को संवैधानिक रूप से संरक्षित किया जा सकता है और क्या अनदेखा किया जा सकता है।

- वर्ष 1954 में सर्वोच्च न्यायालय ने शिरूर मठ मामले में कहा कि 'धर्म' शब्द एक धर्म के तहत 'अभिन्न' सभी अनुष्ठानों और प्रथाओं को कवर करेगा। 'अभिन्न' क्या है, यह निर्धारित करने हेतु किये जाने वाले परीक्षण को 'आवश्यक धार्मिक प्रथा' परीक्षण कहा जाता है।
- प्राय: कानूनी विशेषज्ञों द्वारा धार्मिक प्रथाओं के न्यायिक निर्धारण के संबंध में इस परीक्षण की आलोचना की जाती है, क्योंकि यह न्यायालय को धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप हेतु प्रेरित करता है।
  - विशेषज्ञों का मत है कि न्यायालय का कार्य सार्वजनिक व्यवस्था हेतु धार्मिक प्रथाओं को प्रतिबंधित करने तक सीमित होना चाहिये और न्यायालय को किसी धर्म विशेष के लिये आवश्यक प्रथाओं का निर्धारण नहीं करना चाहिये।
- कई मामलों में न्यायालय ने कुछ प्रथाओं के लिये इस परीक्षण को लागू किया है।
  - वर्ष 2004 के एक फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि 'आनंद मार्ग संप्रदाय' को सार्वजनिक सड़कों पर 'तांडव नृत्य' करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं था, क्योंकि यह संप्रदाय की एक आवश्यक धार्मिक प्रथा नहीं है।
- यद्यपि इन मुद्दों को बड़े पैमाने पर समुदाय-आधारित माना जाता है, ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें न्यायालय ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर भी इस परीक्षण को लागू किया है।
  - उदाहरण के लिये वर्ष 2016 में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय वायु सेना के एक मुस्लिम एयरमैन को दाढ़ी रखने पर सेवामुक्त करने के निर्णय को सही ठहराया था।
  - सशस्त्र बल विनियम, 1964 सशस्त्र बलों के कर्मियों के लिये बाल बढ़ाने को प्रतिबंधित करता है, केवल 'उन कर्मियों को छोड़कर जिनका धर्म बाल काटने या शेव करने पर रोक लगाता है।'
  - न्यायालय ने अनिवार्य रूप से माना था कि दाढ़ी रखना इस्लामी प्रथाओं का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है।

सार्वजनिक व्यवस्था

चर्चा में क्यों ?

कर्नाटक उच्च न्यायालय शैक्षणिक संस्थानों में हिजाब पहनने वाली छात्राओं पर राज्य सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंध की संवैधानिकता को चुनौती देने वाली याचिका पर सुनवाई कर रहा है।

- मामला इस तर्क से संबंधित है कि क्या राज्य 'सार्वजनिक व्यवस्था' (Public Order) के उल्लंघन के आधार पर इस प्रतिबंध को उचित ठहरा सकता है।

सार्वजनिक व्यवस्था क्या है ?

- सार्वजनिक व्यवस्था को आमतौर पर सार्वजनिक शांति और सुरक्षा के समान माना जाता है।
- सार्वजनिक व्यवस्था उन तीन आधारों में से एक है जिस पर राज्य धर्म की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकता है।
  - भारतीय संविधान का अनुच्छेद 25 सभी व्यक्तियों को अंत:करण की स्वतंत्रता और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने का सामान अधिकार देता है, बशर्ते ये अधिकार सार्वजनिक व्यवस्थाओं, नैतिकता, स्वास्थ्य एवं मूल अधिकारों से संबंधित अन्य प्रावधानों के अनुरूप हों।
- सार्वजनिक व्यवस्था, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा अन्य मौलिक अधिकारों को प्रतिबंधित करने वाले आधारों में से भी एक है।
- संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची (सूची 2) के अनुसार, सार्वजनिक व्यवस्था के पहलुओं पर कानून बनाने की शक्ति राज्यों में निहित है।

न्यायालयों द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था की व्याख्या:

- सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले कारक प्रासंगिक हैं और इनका निर्धारण राज्य द्वारा किया जाता है।
- हालाँकि न्यायालयों ने मोटे तौर पर इसकी व्याख्या कुछ ऐसे साधनों के रूप में की है जो व्यापक स्तर पर किसी समुदाय को प्रभावित करते हैं, न कि कुछ व्यक्तियों को।
- राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य (1965) वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि 'सार्वजनिक व्यवस्था' के मामले में की गई एक विशेष कार्रवाई से किसी समुदाय या जनता को व्यापक रूप से प्रभावित होना पड़ता है।
- कानून का उल्लंघन (ऐसा कुछ करना जो कानून या नियम द्वारा निषिद्ध है) हमेशा आदेश को प्रभावित करता है लेकिन इससे पहले कि इसे सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाला कहा जाए, बड़े पैमाने पर समुदाय या जनता प्रभावित होनी चाहिये।
  - इसके लिये तीन संकेंद्रित वृत्तों की कल्पना करनी होगी, जिसमें सबसे बड़ा वृत्त 'कानून और व्यवस्था' का प्रतिनिधित्व करता है, दूसरा 'सार्वजनिक व्यवस्था' का प्रतिनिधित्व करता है और सबसे छोटा वृत्त 'राज्य की सुरक्षा' का प्रतिनिधित्व करता है।

हिजाब पर प्रतिबंध और सार्वजनिक व्यवस्था के बीच संबंध:

- कर्नाटक शिक्षा अधिनियम, 1983 के तहत 5 फरवरी को जारी सरकारी आदेश के अनुसार, 'एकता' और 'अखंडता' के साथ-साथ 'सार्वजनिक व्यवस्था' भी शैक्षणिक संस्थानों में छात्राओं को हिजाब/हेडस्कार्फ पहनने की अनुमति नहीं देने के कारणों में से एक है।

- इससे पहले भी कई न्यायालय सार्वजनिक संस्थानों में अल्पसंख्यकों के लिये ड्रेस कोड निर्धारित करने के आदेश दे चुके हैं।

- याचिकाकर्त्ताओं का तर्क: याचिकाकर्त्ताओं ने यह तर्क दिया है कि कानून और व्यवस्था का प्रत्येक उल्लंघन, सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित नहीं है।
  - सार्वजनिक व्यवस्था अशांति का एक निकृष्ट रूप है जो कि कानून और व्यवस्था के मुद्दे से कहीं ऊपर है।
  - याचिकाकर्त्ताओं ने राज्य से कहा कि केवल छात्राओं द्वारा हिजाब पहनना सार्वजनिक व्यवस्था का मुद्दा कैसे बन सकता है।
- कर्नाटक सरकार का रुख: कर्नाटक के महाधिवक्ता ने तर्क दिया है कि सरकारी आदेश में 'सार्वजनिक व्यवस्था' का कोई उल्लेख नहीं है और याचिकाकर्त्ता द्वारा आदेश को पढ़ने या उसके भाषांतरण में त्रुटि हो सकती है।
  - कन्नड़ भाषा में दिये गए आदेश में वाक्यांश 'सार्वजनिक सुव्यवस्था' (Sarvajanika Suvyavasthe) का उपयोग किया गया है।

विरोध का अधिकार

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि किसानों को विरोध करने का अधिकार है, लेकिन सड़कों (नागरिकों के आवागमन के अधिकार में बाधा) को अनिश्चित काल के लिये अवरुद्ध नहीं किया जा सकता है।

प्रमुख बिंदु

- विरोध का अधिकार:
  - हालाँकि विरोध का अधिकार मौलिक अधिकारों के तहत एक स्पष्ट अधिकार नहीं है, इसे अनुच्छेद 19 के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के अंतर्गत शामिल किया जा सकता है।
    - अनुच्छेद 19(1)(a): अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार सरकार के आचरण पर स्वतंत्र रूप से अपनी राय व्यक्त करने का अधिकार देता है।
    - अनुच्छेद 19(1)(b): राजनीतिक उद्देश्यों के लिये संघ बनाने के लिये संघ (Association) के अधिकार की आवश्यकता होती है।
    - इनका गठन सरकार के निर्णयों को सामूहिक रूप से चुनौती देने के लिये किया जा सकता है।
    - अनुच्छेद 19(1)(c) : शांतिपूर्ण ढंग से एकत्रित होने का अधिकार लोगों को प्रदर्शनों, आंदोलनों और सार्वजनिक सभाओं द्वारा सरकार के कार्यों पर सवाल उठाने तथा आपत्ति जताने व निरंतर विरोध आंदोलन शुरू करने की अनुमति देता है।
    - ये अधिकार प्रत्येक नागरिक को शांतिपूर्वक ढंग से एकत्रित होने और राज्य की कार्रवाई या निष्क्रियता का विरोध करने में सक्षम बनाते हैं।
  - विरोध का अधिकार यह सुनिश्चित करता है कि लोग सजगता/निगारानी पूर्ण ढंग से कार्य कर सकें और सरकारों के कृत्यों की लगातार निगरानी कर सकें।
    - यह सरकारों को उनकी नीतियों और कार्यों के बारे में प्रतिक्रिया प्रदान करता है जिसके बाद संबंधित सरकार परामर्श, बैठकों और चर्चा के माध्यम से अपनी गलतियों को पहचानती है और सुधारती है।
- विरोध के अधिकार पर प्रतिबंध:
  - अनुच्छेद 19(2) वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर उचित प्रतिबंध लगाता है। ये उचित प्रतिबंध निम्नलिखित आधार पर लगाए गए हैं:
    - भारत की संप्रभुता और अखंडता,
    - राज्य की सुरक्षा,
    - विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध,
    - सार्वजनिक व्यवस्था,
    - शालीनता या नैतिकता
    - न्यायालय की अवमानना,
    - मानहानि
    - किसी अपराध के लिये उकसाना।
  - इसके अलावा, विरोध के दौरान हिंसा का सहारा लेना नागरिकों के एक प्रमुख मौलिक कर्तव्य का उल्लंघन है।
    - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51A में मौलिक कर्त्तव्यों के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक के लिये "सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करने और हिंसा से दूर रहने" का प्रावधान किया गया है।
- संबंधित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय:
  - सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 2019 में शाहीन बाग विरोध के संबंध में याचिका पर सुनवाई करते हुए कानून के खिलाफ शांतिपूर्ण विरोध के अधिकार को बरकरार रखा, लेकिन यह भी साफ कर दिया कि अनिश्चित काल के लिये सार्वजनिक रास्तों और सार्वजनिक स्थानों पर कब्ज़ा नहीं किया जा सकता है।
  - सर्वोच्च न्यायालय ने मज़दूर किसान शक्ति संगठन बनाम भारत संघ और एक अन्य मामले में अपने 2018 के फैसले का उल्लेख किया, जो दिल्ली के जंतर-मंतर पर प्रदर्शनों से संबंधित था।
    - निर्णय ने स्थानीय निवासियों के हितों को प्रदर्शनकारियों के हितों के साथ संतुलित करने का प्रयास किया और पुलिस को शांतिपूर्ण विरोध एवं प्रदर्शनों हेतु क्षेत्र के सीमित उपयोग के लिये एक उचित व्यवस्था करने तथा इसके लिये मानदंड निर्धारित करने का निर्देश दिया।

- रामलीला मैदान घटना बनाम गृह सचिव, भारत संघ एवं अन्य मामले (2012) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था, "नागरिकों को एकत्रित होने और शांतिपूर्ण विरोध का मौलिक अधिकार है जिसे एक मनमानी कार्यकारी या विधायी कार्रवाई से नहीं हटाया जा सकता है"।

सरकारी सहायता मौलिक अधिकार नहीं: SC

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय (SC) ने फैसला सुनाया कि किसी संस्था को दी जाने वाली सरकारी सहायता नीति का विषय है, यह मौलिक अधिकार नहीं है।

- भारत के संविधान का अनुच्छेद 30 (शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के लिये अल्पसंख्यकों के अधिकारों से संबंधित) अपने स्वयं के प्रतिबंधों के अधीन है।

प्रमुख बिंदु

- सहायता एक मौलिक अधिकार नहीं:
  - कोई भी संस्था चाहे वह बहुसंख्यक हो या अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित हो, सरकारी सहायता प्राप्त करने का अधिकार उसका मौलिक अधिकार नहीं है। दोनों ही मामलों में सहायता के नियमों और शर्तों का समान रूप से पालन करना होगा।
- कारण:
  - सरकारी सहायता एक नीतिगत निर्णय है। यह विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है जिसमें संस्था के हित और सरकार की कार्यप्रणाली को समझने की क्षमता शामिल है।
  - वित्तीय बाधाएँ और कमियाँ ऐसे कारक हैं जिन्हें सहायता देते समय कोई भी निर्णय लेने में प्रासंगिक माना जाता है, इसमें सहायता प्रदान करने का निर्णय एवं सहायता के वितरण के तरीके दोनों शामिल हैं।
- सहायता वापस लेना:
  - यदि सरकार ने सहायता वापस लेने के लिये कोई नीति बनाई है तो कोई भी संस्था इस निर्णय पर प्रश्न नहीं उठा सकती है।
  - यदि कोई संस्था ऐसी सहायता से जुड़ी शर्तों को स्वीकार और उनका पालन नहीं करना चाहती है तो वह अनुदान को अस्वीकार करने तथा अपने तरीके से आगे बढ़ सकती है। इसके विपरीत किसी संस्था को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि सहायता अनुदान उसकी अपनी शर्तों पर मिलना चाहिये।

अनुच्छेद 30

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों, चाहे धार्मिक हों या भाषायी, को अधिकार प्रदान करता है कि सभी अल्पसंख्यक वर्गों को उनकी रुचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का अधिकार होगा।
- अनुच्छेद 30(1A) अल्पसंख्यक समूहों द्वारा स्थापित किसी भी शैक्षणिक संस्थान की संपत्ति के अधिग्रहण के लिये राशि के निर्धारण से संबंधित है।
- अनुच्छेद 30(2) में कहा गया है सरकार को आर्थिक सहायता देते समय अल्पसंख्यक द्वारा प्रबंधित किसी भी शैक्षणिक संस्थान के साथ भेदभाव नहीं करना चाहिये।

निवास और अबाध संचरण का अधिकार

चर्चा में क्यों?

हाल ही में एक पत्रकार के खिलाफ 'निर्वासन आदेश' को रद्द करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि 'भारत के किसी भी भाग में निवास करने' और 'भारतीय राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण' के मौलिक अधिकार को किसी 'सामान्य या सारहीन आधार' पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

- 'निर्वासन आदेश' कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में किसी व्यक्ति की आवाजाही को प्रतिबंधित करता है।
- सर्वोच्च न्यायालय के मुताबिक, किसी इलाके में कानून और व्यवस्था बनाए रखने और/या सार्वजनिक शांति के उल्लंघन को रोकने के लिये असाधारण मामलों में ही इस प्रकार की कठोर कार्रवाई की जानी चाहिये।

प्रमुख बिंदु

- 'भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण' का आधिकार
  - भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(1)(d) प्रत्येक नागरिक को देश के संपूर्ण राज्यक्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने का अधिकार प्रदान करता है।
  - यह अधिकार केवल राज्य की कार्रवाई से सुरक्षा प्रदान करता है, न कि निजी व्यक्तियों से।
  - इसके अलावा यह अधिकार केवल भारतीय नागरिकों के लिये उपलब्ध है, न कि विदेशी नागरिकों या कानूनी व्यक्तियों- जैसे कंपनियों या निगमों आदि के लिये।
  - 'अबाध संचरण' की स्वतंत्रता के दो आयाम हैं, आंतरिक (देश के अंदर जाने का अधिकार) और बाहरी (देश से बाहर जाने का अधिकार तथा देश में वापस आने का अधिकार)।
    - अनुच्छेद-19 केवल प्रथम आयाम की रक्षा करता है।
    - दूसरा आयाम अनुच्छेद-21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) के तहत विनियमित किया जाता है।
  - इस स्वतंत्रता पर प्रतिबंध केवल दो आधारों पर लगाया जा सकता है जिनका उल्लेख स्वयं संविधान के अनुच्छेद 19(5)

में किया गया है, जिसमें आम जनता के हित और किसी अनुसूचित जनजाति के हितों की सुरक्षा करना शामिल है। उदाहरण के लिये:

- सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य के आधार पर और सार्वजनिक नैतिकता के हित में वेश्यावृत्ति में संलग्न लोगों की आवाजाही की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित किया जा सकता है।
- अनुसूचित जनजातियों की विशिष्ट संस्कृति, भाषा, परंपराओं और शिष्टाचार की रक्षा करने तथा उनके पारंपरिक व्यवसाय एवं संपत्तियों को शोषण से बचाने के लिये आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी लोगों का प्रवेश प्रतिबंधित है।

- भारत में किसी भी भाग में निवास करने और बसने की स्वतंत्रता
  - संविधान के अनुच्छेद 19(1)(e) के अनुसार, भारत के प्रत्येक नागरिक को 'भारत में किसी भी भाग में निवास करने और बसने का अधिकार है।'
  - इस प्रावधान का उद्देश्य देश भर के भीतर या किसी विशिष्ट हिस्से में आंतरिक बाधाओं को दूर करना है।
  - यह अधिकार अनुच्छेद 19 के खंड (5) में उल्लिखित उचित प्रतिबंधों के अधीन भी है।
  - 'भारत में किसी भी भाग में निवास करने' और 'भारतीय राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण' के मौलिक अधिकार प्राय: एक-दूसरे के पूरक हैं और इन्हें एक साथ देखा जाता है।

संविधान का अनुच्छेद 19

- अनुच्छेद 19 में वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रावधान है।
- इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपने विचारों, विश्वासों और उन्हें मौखिक, लेखन, मुद्रण, चित्र या किसी अन्य तरीके से स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 19 सभी नागरिकों को स्वतंत्रता के छह अधिकारों की गारंटी देता है, जो इस प्रकार हैं:
  - वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार।
  - शांतिपूर्वक सम्मेलन में भाग लेने की स्वतंत्रता का अधिकार।
  - संगम या संघ बनाने का अधिकार।
  - अबाध संचरण की स्वतंत्रता का अधिकार।
  - भारत के किसी भी क्षेत्र में निवास का अधिकार।
  - व्यवसाय आदि की स्वतंत्रता का अधिकार।
- वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 19(2))
  - इस तरह के प्रतिबंध देश की सुरक्षा, संप्रभुता और अखंडता, विदेशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता के साथ-साथ द्वेषपूर्ण भाषा, मानहानि, न्यायालय की अवमानना के संदर्भ में उपयोगी हो सकते हैं।

निवारक निरोध पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय (SC) ने फैसला सुनाया कि एक निवारक निरोध आदेश केवल तभी पारित किया जा सकता है जब बंदी के कारण सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो।

- सुप्रीम कोर्ट ने सरकारों और अन्य अदालतों को निवारक नज़रबंदी के तहत नज़रबंदी से निपटने के लिये भी निर्देश दिया।

प्रमुख बिंदु:

- सार्वजनिक व्यवस्था के लिये निवारक निरोध: अदालत ने माना कि यह विवादित नहीं हो सकता है कि डिटेनू एक 'सफेदपोश अपराधी' हो सकता है और यदि उसे मुक्त कर दिया जाता है, तो भोले-भाले व्यक्तियों को धोखा देना जारी रखेगा।
  - हालाँकि निवारक निरोध आदेश केवल तभी पारित किया जा सकता है जब उसकी गतिविधियाँ सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं या प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने की संभावना है।
- 'सार्वजनिक आदेश' शब्द पर स्पष्टता: निवारक निरोध केवल सार्वजनिक अव्यवस्था को रोकने के लिये एक आवश्यक बुराई है, लेकिन निवारक निरोध कानून के संदर्भ में सार्वजनिक व्यवस्था की स्थिति में इसे अभिव्यक्ति से जोड़कर उदार अर्थ में नहीं लिया जा सकता है।
  - कानून का उल्लंघन, जैसे- धोखाधड़ी या आपराधिक विश्वासघात में शामिल होना, निश्चित रूप से 'कानून और व्यवस्था' को प्रभावित करता है।
  - हालाँकि जब यह समुदाय या जनता को बड़े पैमाने पर प्रभावित करता है तभी इसे 'सार्वजनिक व्यवस्था' को प्रभावित करना कहा जा सकता है।
- सरकार को निर्देश: राज्य को उन सभी एवं विविध "कानून और व्यवस्था" संबंधी समस्याओं से निपटने के लिये मनमाने ढंग से "निवारक निरोध" का सहारा नहीं लेना चाहिये, जिनसे देश के सामान्य कानूनों द्वारा निपटा जा सकता है।
- न्यायालयों को निर्देश: निवारक निरोध के तहत वैधता तय करने हेतु अदालतों से प्रश्न पूछा जाना चाहिये:
  - क्या देश का सामान्य कानून स्थिति से निपटने के लिये पर्याप्त था? यदि उत्तर सकारात्मक है, तो निरोध आदेश अवैध होगा।
  - उदाहरण के लिये सड़क पर लड़ रहे दो शराबियों के मामले में अदालत कहती है कि यह कानून और व्यवस्था की समस्या थी, न कि 'सार्वजनिक अव्यवस्था' का तो यहाँ समाधान निवारक निरोध नहीं है।

- निवारक निरोध स्वतंत्रता को कमज़ोर करता है: एक नागरिक की स्वतंत्रता उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार है जिसे हमारे पूर्वजों ने लंबे समय से ऐतिहासिक और कठिन संघर्षों के बाद जीता है।
  - यदि निवारक निरोध की शक्ति को एक सीमा तक सीमित नहीं किया जाता है, तो स्वतंत्रता का अधिकार निरर्थक हो जाएगा यानी उसका कोई मूल्य या महत्त्व नहीं रह जाएगा।
  - इसलिये निवारक निरोध अनुच्छेद 21 (कानून की उचित प्रक्रिया) के दायरे में आना चाहिये और इसे अनुच्छेद 22 (मनमाने ढंग से गिरफ्तारी और निरोध के खिलाफ सुरक्षा) तथा विचाराधीन कानून के साथ पढ़ा जाना चाहिये।

व्हाइट कॉलर क्राइम बनाम ब्लू कॉलर क्राइम

- व्हाइट कॉलर क्राइम: यह व्यक्तियों, व्यवसायों और सरकारी पेशेवरों द्वारा आर्थिक रूप से प्रेरित अहिंसक अपराध को दर्शाता है।
  - इन अपराधों में छल और विश्वास का उल्लंघन प्रमुख है।
  - व्हाइट कॉलर क्राइम के उदाहरणों में प्रतिभूति धोखाधड़ी, कॉर्पोरेट धोखाधड़ी और मनी लॉन्ड्रिंग, पिरामिड योजनाएँ आदि शामिल हैं।
  - इस प्रकार के अपराधों को शिक्षित और संपन्न लोगों से जोड़कर देखा जाता है।
  - यह शब्द पहली बार वर्ष 1949 में समाजशास्त्री एडविन सदरलैंड द्वारा प्रस्तुत किया गया था।
- ब्लू कॉलर क्राइम: ये अपराध मुख्य रूप से छोटे पैमाने पर होते हैं, जिसमें शामिल व्यक्ति या समूह को तत्काल लाभ होता है।
  - इसमें व्यक्तिगत अपराध भी शामिल हो सकते हैं जो तत्काल प्रतिक्रिया से प्रेरित हो सकते हैं, जैसे कि झगड़े या टकराव आदि।
  - इन अपराधों में नारकोटिक उत्पादन या वितरण, यौन हमला, चोरी, सेंधमारी, हत्या आदि को शामिल किया जा सकता है।

निवारक निरोध

संवैधानिक प्रावधान:

- अनुच्छेद 22 गिरफ्तार या हिरासत (निरोध) में लिये गए व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करता है। निरोध दो प्रकार का होता है- दंडात्मक और निवारक।
  - दंडात्मक निरोध का आशय किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किये गए अपराध के लिये अदालत में मुकदमे और दोषसिद्धि के बाद दंडित करने से है।
  - वहीं दूसरी ओर, निवारक निरोध का अर्थ किसी व्यक्ति को बिना किसी मुकदमे और अदालत द्वारा दोषसिद्धि के हिरासत में लेने से है।
- अनुच्छेद 22 के दो भाग हैं- पहला भाग साधारण कानून के मामलों से संबंधित है और दूसरा भाग निवारक निरोध कानून के मामलों से संबंधित है।

दंडात्मक निरोध के तहत दिये गए अधिकार	निवारक निरोध के तहत दिये गए अधिकार
• गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित करने का अधिकार।	• किसी व्यक्ति की नज़रबंदी तीन महीने से अधिक नहीं हो सकती जब तक कि एक सलाहकार बोर्ड विस्तारित नज़रबंदी हेतु पर्याप्त कारण प्रस्तुत नहीं करता है। • बोर्ड में एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश शामिल होते हैं।
• एक कानूनी व्यवसायी से परामर्श करने और बचाव करने का अधिकार।	• नज़रबंदी के आधारों के बारे में नज़रबंद व्यक्ति को सूचित किया जाना चाहिये। • तथापि जनहित के विरुद्ध माने जाने वाले तथ्यों को प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है।
• यात्रा के समय को छोड़कर 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश होने का अधिकार।	• बंदी को निरोध आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अवसर दिया जाना चाहिये। • 24 घंटे के बाद रिहा होने का अधिकार जब तक कि मजिस्ट्रेट आगे की हिरासत के लिये अधिकृत नहीं करता।
• ये सुरक्षा उपाय किसी विदेशी शत्रु के लिये उपलब्ध नहीं हैं।	• यह सुरक्षा नागरिकों के साथ-साथ बाह्य व्यक्ति दोनों के लिये उपलब्ध है।

नोट: वर्ष 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम ने एक सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किये बिना नज़रबंदी की अवधि को तीन से घटाकर दो महीने कर दिया है। हालाँकि यह प्रावधान अभी तक लागू नहीं किया गया है, इसलिये तीन महीने की मूल अवधि अभी भी जारी है।

संसद द्वारा बनाए गए निवारक निरोध कानून हैं:

- निवारक निरोध अधिनियम, 1950 जो वर्ष 1969 में समाप्त हो गया।
- आंतरिक सुरक्षा का रखरखाव अधिनियम (मीसा), 1971, इसे वर्ष 1978 में निरस्त किया गया।
- विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी गतिविधियों की रोकथाम अधिनियम (COFEPOSA), 1974.
- राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (एनएसए), 1980
- कालाबाज़ारी की रोकथाम और आवश्यक वस्तु की आपूर्ति का रखरखाव अधिनियम (PBMSECA), 1980.
- आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम (टाडा), 1985, वर्ष 1995 में निरस्त किया गया।
- नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट (PITNDPSA), 1988 में अवैध यातायात की रोकथाम।
- आतंकवाद निरोधक अधिनियम (पोटा), 2002 को वर्ष 2004 में निरस्त किया गया।

समान नागरिक संहिता

चर्चा में क्यों?

हाल ही में कानून और न्याय मंत्रालय ने वर्ष 2019 में दायर एक जनहित याचिका के जवाब में कहा कि समान नागरिक संहिता (यूसीसी) का कार्यान्वयन, संविधान के तहत एक निर्देशक सिद्धांत (अनुच्छेद 44) है जो सार्वजनिक नीति का मामला है और यह कोई निर्देश नहीं है। यह न्यायालय द्वारा जारी किया जा सकता है।

- केंद्र ने भारतीय विधि आयोग (21वें) से यूसीसी से संबंधित विभिन्न मुद्दों की जाँच करने और उस पर सिफारिशें प्रदान करने का अनुरोध किया है।

प्रमुख बिंदु

- परिचय
  - समान नागरिक संहिता पूरे देश के लिये एक समान कानून के साथ ही सभी धार्मिक समुदायों के लिये विवाह, तलाक, विरासत, गोद लेने आदि कानूनों में भी एकरूपता प्रदान करने का प्रावधान करती है।
  - संविधान के अनुच्छेद 44 में वर्णित है कि राज्य भारत के पूरे क्षेत्र में नागरिकों के लिये एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा।
    - अनुच्छेद-44, संविधान में वर्णित राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में से एक है।
    - अनुच्छेद-37 में परिभाषित है कि राज्य के नीति निदेशक तत्त्व संबंधी प्रावधानों को किसी भी न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है लेकिन इसमें निहित सिद्धांत शासन व्यवस्था में मौलिक प्रकृति के होंगे।
- भारत में समान नागरिक संहिता की स्थिति
  - भारतीय कानून अधिकांश नागरिक मामलों में एक समान कोड का पालन करते हैं जैसे कि भारतीय अनुबंध अधिनियम 1872, नागरिक प्रक्रिया संहिता, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882, भागीदारी अधिनियम 1932, साक्ष्य अधिनियम, 1872 आदि।
  - हालाँकि राज्यों ने सैकड़ों संशोधन किये हैं, इसलिये कुछ मामलों में इन धर्मनिरपेक्ष नागरिक कानूनों के तहत भी विविधता है।
    - हाल ही में कई राज्यों ने समान मोटर वाहन अधिनियम, 2019 द्वारा शासित होने से इनकार कर दिया।
- भूमिका:
  - समान नागरिक संहिता (UCC) की अवधारणा का विकास औपनिवेशिक भारत में तब हुआ, जब ब्रिटिश सरकार ने वर्ष 1835 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें अपराधों, सबूतों और अनुबंधों जैसे विभिन्न विषयों पर भारतीय कानून के संहिताकरण में एकरूपता लाने की आवश्यकता पर बल दिया गया, हालाँकि रिपोर्ट में हिंदू और मुसलमानों के व्यक्तिगत कानूनों को इस एकरूपता से बाहर रखने की सिफारिश की गई।
  - ब्रिटिश शासन के अंत में व्यक्तिगत मुद्दों से निपटने वाले कानूनों की संख्या में वृद्धि ने सरकार को वर्ष 1941 में हिंदू कानून को संहिताबद्ध करने के लिये बी.एन. राव समिति गठित करने के लिये मजबूर किया।
  - इन सिफारिशों के आधार पर हिंदुओं, बौद्धों, जैनों और सिखों के लिये निर्वसीयत उत्तराधिकार से संबंधित कानून को संशोधित और संहिताबद्ध करने हेतु वर्ष 1956 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के रूप में एक विधेयक को अपनाया गया।
    - हालाँकि मुस्लिम, इसाई और पारसी लोगों के लिये अलग-अलग व्यक्तिगत कानून थे।
  - कानून में समरूपता लाने के लिये विभिन्न न्यायालयों ने अक्सर अपने निर्णयों में कहा है कि सरकार को एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने की दिशा में प्रयास करना चाहिये।
    - शाह बानो मामले (1985) में दिया गया निर्णय सर्वविदित है।
    - सरला मुद्गल वाद (1995) भी इस संबंध में काफी चर्चित है, जो कि बहुविवाह के मामलों और इससे संबंधित कानूनों के बीच विवाद से जुड़ा हुआ था।

- प्राय: यह तर्क दिया जाता है 'ट्रिपल तलाक' और बहुविवाह जैसी प्रथाएँ एक महिला के सम्मान और उसके गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं, केंद्र ने सवाल उठाया है कि क्या धार्मिक प्रथाओं को दी गई संवैधानिक सुरक्षा उन प्रथाओं तक भी विस्तारित होनी चाहिये जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती हैं।

- व्यक्तिगत कानूनों के लिये समान नागरिक संहिता के निहितार्थ:
  - समाज के संवेदनशील वर्ग को संरक्षण
    - समान नागरिक संहिता का उद्देश्य महिलाओं और धार्मिक अल्पसंख्यकों सहित संवेदनशील वर्गों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है, जबकि एकरूपता से देश में राष्ट्रवादी भावना को भी बल मिलेगा।
  - कानूनों का सरलीकरण
    - समान नागरिक संहिता विवाह, विरासत और उत्तराधिकार समेत विभिन्न मुद्दों से संबंधित जटिल कानूनों को सरल बनाएगी। परिणामस्वरूप समान नागरिक कानून सभी नागरिकों पर लागू होंगे, चाहे वे किसी भी धर्म में विश्वास रखते हों।
  - धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों का पालन करना
    - भारतीय संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द सन्निहित है और एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य को धार्मिक प्रथाओं के आधार पर विभेदित नियमों के बजाय सभी नागरिकों के लिये एक समान कानून बनाना चाहिये।
  - लैंगिक न्याय
    - यदि समान नागरिक संहिता को लागू किया जाता है, तो वर्तमान में मौजूद सभी व्यक्तिगत कानून समाप्त हो जाएंगे, जिससे उन कानूनों में मौजूद लैंगिक पक्षपात की समस्या से भी निपटा जा सकेगा।

अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान और शिक्षा का अधिकार

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने मदरसों और वैदिक स्कूलों (अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों- MEI) को बच्चों के निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार (RTE) अधिनियम 2009 के दायरे से बाहर करने पर सवाल उठाने वाली एक याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया है।

- इन संस्थानों को विशेष रूप से अगस्त 2012 के संशोधन द्वारा अनिवार्य शिक्षा के अधिकार (RTE) अधिनियम, 2009 में शामिल किया गया था।
- NCPCR की रिपोर्ट में अल्पसंख्यक संस्थानों की अनुपातहीन संख्या या अल्पसंख्यक संस्थानों में गैर- अल्पसंख्यक वर्ग के प्रभुत्व पर प्रकाश डाला गया है।

MEI और RTE के संबंध में कानूनी प्रावधान:

- अनुच्छेद 21A के तहत शिक्षा का अधिकार: यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21(A) (86वें संशोधन) के तहत भारत में 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिये निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के महत्त्व के तौर-तरीकों का वर्णन करता है।
  - अधिनियम में समाज के वंचित वर्गों के लिये 25% आरक्षण अनिवार्य है और वंचित समूहों में शामिल हैं:
    - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति
    - सामाजिक रूप से पिछड़ा वर्ग
    - नि:शक्तजन
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में अल्पसंख्यकों और अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित संस्थानों के अधिकारों को सुरक्षित करने वाले प्रावधान हैं।
  - अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को अधिकार प्रदान करता है कि सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करने का अधिकार होगा।
- अधिनियम की धारा 1(4) और 1(5) के संदर्भ में आरटीई में संशोधन किया गया।
  - RTI अधिनियम की धारा 1(5) में कहा गया है कि "इस अधिनियम में शामिल कोई भी प्रावधान मदरसों, वैदिक पाठशालाओं और प्राथमिक रूप से धार्मिक शिक्षा प्रदान करने वाले शैक्षणिक संस्थानों पर लागू नहीं होगा
  - आरटीई की धारा 1(4) में कहा गया है कि "संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 के प्रावधानों के अधीन इस अधिनियम के प्रावधान बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करने हेतु लागू होंगे।

निजता का अधिकार

चर्चा में क्यों?

हाल ही में मद्रास उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने कहा है कि उसी अदालत के एक अन्य न्यायाधीश द्वारा हाल ही में पारित एक आदेश जिसमें स्पा [मालिश और चिकित्सा केंद्र] के अंदर सीसीटीवी कैमरे लगाने को अनिवार्य किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक फैसले के.एस पुट्टस्वामी मामला (2017) के विपरीत प्रतीत होता है।

- इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह घोषणा की थी कि अनुच्छेद 21 में गारंटीकृत प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार में निजता का अधिकार भी शामिल है।

प्रमुख बिंदु

- परिचय:
  - अंतर्निहित मूल्य: निजता के इस अधिकार को मूल अधिकार के रूप में देखा जाता है:
    - निहित मूल्य (Inherent value): यह प्रत्येक व्यक्ति की मूल गरिमा के लिये महत्त्वपूर्ण है।
    - वाद्य मूल्य (Instrumental value): यह किसी व्यक्ति के हस्तक्षेप से मुक्त जीवन जीने की क्षमता को आगे बढ़ाता है।
  - निजता के अधिकार के रूप: अनुच्छेद 21 में गारंटी के रूप में निजता कई अलग-अलग रूप में शामिल हैं:
    - दैहिक स्वतंत्रता/शारीरिक स्वायत्तता का अधिकार
    - सूचनात्मक गोपनीयता का अधिकार
    - पसंद का अधिकार।
  - आराम करने का अधिकार/राईट टू रिलैक्स: यह संदेह कि 'स्पा' में अनैतिक गतिविधियाँ हो रही हैं, किसी व्यक्ति के आराम करने के अधिकार में दखल देने का पर्याप्त कारण नहीं हो सकता, क्योंकि यह आंतरिक रूप से उसके मौलिक अधिकार (निजता के अधिकार) का हिस्सा है।
    - इस प्रकार, स्पा जैसे किसी परिसर के भीतर सीसीटीवी उपकरण की स्थापना निस्संदेह किसी व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता के खिलाफ होगी।
    - ये अनुल्लंघनीय स्थान हैं जहाँ राज्य सरकार को नज़र रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती
  - शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत: किसी भी न्यायिक उपाय के ज़रिये मौलिक अधिकारों की पहुँच को कम नहीं किया जा सकता है।
    - इस सिद्धांत के तहत यह माना गया है कि, यद्यपि कोई अधिकार पूर्ण नहीं हो सकता है इसलिये केवल विधायिका या कार्यपालिका द्वारा ही प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।
    - इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय अकेले ही अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करके ऐसा कर सकता है।

निजता का अधिकार

- परिचय:
  - आमतौर पर यह समझा जाता है कि गोपनीयता अकेला छोड़ दिये जाने के अधिकार (Right to Be Left Alone) का पर्याय है।
  - सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 2017 में के.एस. पुत्तास्वामी बनाम भारतीय संघ ऐतिहासिक निर्णय में गोपनीयता और उसके महत्त्व को वर्णित किया। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, निजता का अधिकार एक मौलिक और अविच्छेद्य अधिकार है और इसके तहत व्यक्ति से जुड़ी सभी सूचनाओं के साथ उसके द्वारा लिये गए निर्णय शामिल हैं।
  - निजता के अधिकार को अनुच्छेद 21 के तहत प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार के आंतरिक भाग के रूप में तथा संविधान के भाग-III द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रता के हिस्से के रूप में संरक्षित किया गया है।
- प्रतिबंध (निर्णय में वर्णित):
  - इस अधिकार को केवल राज्य कार्रवाई के तहत तभी प्रतिबंधित किया जा सकता है, जब वे निम्नलिखित तीन परीक्षणों को पास करते हों :
    - पहला, ऐसी राजकीय कार्रवाई के लिये एक विधायी जनादेश होना चाहिये;
    - दूसरा, इसे एक वैध राजकीय उद्देश्य का पालन करना चाहिये;
    - तीसरा, यह यथोचित होनी चाहिये, अर्थात् ऐसी राजकीय कार्रवाई- प्रकृति और सीमा में समानुपाती होनी चाहिये, एक लोकतांत्रिक समाज के लिये आवश्यक होनी चाहिये तथा किसी लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु उपलब्ध विकल्पों में से सबसे कम अंतर्वेधी होनी चाहिये।
- निजता की सुरक्षा हेतु सरकार द्वारा उठाए गए कदम: निजता के महत्त्व को स्वीकार करते हुए सरकार ने व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक 2019 को संसद में पेश किया है।

भूल जाने का अधिकार

चर्चा में क्यों?

हाल ही में केंद्र सरकार ने दिल्ली उच्च न्यायालय को सूचित किया कि भूल जाने के अधिकार की अंतर्राष्ट्रीय कानूनी अवधारणा भारत में विकसित हो रही है और यह निजता के अधिकार के अंतर्गत आता है।

- सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, निजता के अधिकार में भूलने का अधिकार (RTBF) और अकेले रहने का अधिकार भी शामिल है।

प्रमुख बिंदु

- निजता का अधिकार: पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ मामले, 2017 में निजता के अधिकार को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मौलिक अधिकार घोषित किया गया था।
  - निजता का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आंतरिक हिस्से के रूप में और संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रता के एक हिस्से के रूप में संरक्षित है।

- भूल जाने का अधिकार: एक बार जब व्यक्तिगत जानकारी आवश्यक या प्रासंगिक नहीं रह जाती है, तो इंटरनेट, खोज, डेटाबेस, वेबसाइटों या किसी अन्य सार्वजनिक प्लेटफॉर्म से सार्वजनिक रूप से उपलब्ध व्यक्तिगत जानकारी को हटाने का अधिकार है।
  - गूगल स्पेन मामले में यूरोपीय संघ के न्यायालय (CJEU) द्वारा वर्ष 2014 में दिये गए फैसले के बाद RTBF को महत्त्व मिला।
  - भारतीय संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ, 2017 में कहा कि RTBF निजता के व्यापक अधिकार का एक हिस्सा था।
    - RTBF अनुच्छेद 21 के तहत निजता के अधिकार से और आंशिक रूप से अनुच्छेद 21 के तहत गरिमा के अधिकार से निकलता है।
- अकेले रहने का अधिकार: इसका मतलब यह नहीं है कि कोई समाज से अलग हो रहा है। यह एक अपेक्षा है कि समाज व्यक्ति द्वारा किये गए विकल्पों में तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि वे दूसरों को नुकसान नहीं पहुँचाते।
- RTBF से जुड़े मुद्दे:
  - गोपनीयता बनाम सूचना: किसी दी गई स्थिति में RTBF का अस्तित्व अन्य परस्पर विरोधी अधिकारों जैसे कि स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अधिकार या अन्य प्रकाशन अधिकारों के साथ संतुलन पर निर्भर करता है।
    - उदाहरण के लिये एक व्यक्ति अपने आपराधिक रिकॉर्ड के बारे में जानकारी को गूगल से डी-लिंक करना चाहता है और लोगों के लिये कुछ पत्रकारिता रिपोर्टों तक पहुँचना मुश्किल बना सकता है।
    - यह अनुच्छेद 21 में वर्णित व्यक्ति के एकांतवास के अधिकार की अनुच्छेद 19 में वर्णित मीडिया द्वारा रिपोर्ट करने के अधिकारों से विरोधाभास की स्थिति को दर्शाता है।
  - निजी व्यक्तियों के खिलाफ प्रवर्तनीयता: RTBF का दावा आम तौर पर एक निजी पार्टी (एक मीडिया या समाचार वेबसाइट) के खिलाफ किया जाएगा।
    - इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या निजी व्यक्ति के खिलाफ मौलिक अधिकारों को लागू किया जा सकता है, जो सामान्यत: राज्य राज्य के विरुद्ध लागू करने योग्य/प्रवर्तनीय है।
    - केवल अनुच्छेद 15(2), अनुच्छेद 17 और अनुच्छेद 23 एक निजी पार्टी के एक निजी अधिनियम के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है जिसे संविधान के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी जाती है।
  - अस्पष्ट निर्णय: हाल के वर्षों में, RTBF को संहिताबद्ध करने के लिये डेटा संरक्षण कानून के बिना, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा अधिकार के कुछ असंगत और अस्पष्ट निर्णय लिये गये हैं।
    - भारत में न्यायालयों ने बार-बार RTBF के आवेदन को स्वीकार या अस्वीकार कर दिया गया है, जबकि इससे जुड़े व्यापक संवैधानिक प्रश्नों को पूरी तरह से अनदेखा किया गया।

गोपनीयता की रक्षा हेतु सरकार द्वारा किये गये प्रयास

- व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक 2019:
  - यह व्यक्तिगत डेटा से संबद्ध व्यक्तियों की गोपनीयता को सुरक्षा प्रदान करने एवं उक्त उद्देश्यों और किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत डेटा से संबंधित मामलों के लिये भारतीय डेटा संरक्षण प्राधिकरण की स्थापना का प्रावधान करता है।
  - इसे बी. एन. श्रीकृष्ण समिति (2018) की सिफारिशों पर तैयार किया गया।
- सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000:
  - यह कंप्यूटर सिस्टम से डेटा के संबंध में कुछ उल्लंघनों के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है। इसमें कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम और उसमें संग्रहीत डेटा के अनधिकृत उपयोग को रोकने के प्रावधान हैं।

प्रतिष्ठा का अधिकार बनाम गरिमा का अधिकार

चर्चा में क्यों?

हाल ही में दिल्ली के एक न्यायालय ने पूर्व केंद्रीय मंत्री द्वारा एक पत्रकार के खिलाफ उसके ट्वीट्स को लेकर यौन उत्पीड़न का आरोप लगाते हुए दायर किये गए आपराधिक मानहानि के मुकदमे को खारिज़ कर दिया है।

प्रमुख बिंदु:

न्यायालय द्वारा लिया गया संज्ञान:

- न्यायालय ने कार्यस्थल पर होने वाले शोषण के बारे में संज्ञान लिया, क्योंकि आरोपी पत्रकार के खिलाफ यौन उत्पीड़न की घटना के समय यौन उत्पीड़न संबंधी शिकायत निवारण तंत्र की कमी थी।
  - यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशाखा दिशा-निर्देश जारी करने और कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 (The Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013) को लागू करने से पहले का मामला था।

न्यायालय का निर्णय:

- महिलाओं के जीवन और गरिमा के अधिकार की कीमत पर प्रतिष्ठा के अधिकार की रक्षा नहीं की जा सकती।
- प्रतिष्ठा का अधिकार:
  - सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, प्रतिष्ठा का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 का एक अभिन्न अंग है।
  - इसके अतिरिक्त भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 499 (आपराधिक मानहानि) का अर्थ भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाना नहीं है क्योंकि यह सुनिश्चित करती है कि विभिन्न सामाजिक हितों को जनता के साझा मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करके सेवा प्रदान की जाए।
- जीवन का अधिकार (अनुच्छेद-21):
  - विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार, कोई भी व्यक्ति अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं होगा।
  - यह हर व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार प्रदान करता है।
- गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार:
  - वर्ष 1978 के मेनका गांधी बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 को एक नया आयाम दिया और यह माना कि जीने का अधिकार केवल एक शारीरिक अधिकार नहीं है, बल्कि इसके दायरे में मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है।
- महिला को अपनी पसंद के किसी भी मंच पर दशकों बाद भी अपनी शिकायत रखने का अधिकार है।

मानहानि:

क्या है मानहानि ?

- भारत में मानहानि एक सिविल दोष (Civil Wrong) और आपराधिक कृत्य दोनों हो सकते हैं।
  - इन दोनों के मध्य अंतर इनके द्वारा प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्यों में अंतर्निहित है।
  - सिविल दोष के अंतर्गत मुआवज़े के माध्यम से किसी हानि की क्षतिपूर्ति की जाती है और कृत्य में सुधार का प्रयास किया जाता है, जबकि मानहानि के आपराधिक मामलों में किसी गलत कृत्य के लिये अपराधी को दंडित कर दूसरे लोगों को ऐसा न करने के लिये संदेश देने की वकालत की जाती है।

मानहानि संबंधी कानून:

- भारतीय कानूनों में आपराधिक मानहानि को विशेष रूप से भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा 499 के तहत अपराध के रूप में परिभाषित किया गया है, जबकि नागरिक मानहानि 'अपकृत्य कानून' (कानून का एक क्षेत्र जो गलतियों को परिभाषित करने के लिये अन्य कानूनों पर निर्भर नहीं होता है, लेकिन इसे गलत तरीके से परिभाषित करने करने वाले मामलों पर संज्ञान लेता है) पर आधारित होता है।
- भारतीय दंड संहिता की धारा 499 के अनुसार, जो कोई भी बोले गए या पढ़े जाने के आशय से शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृष्य रूपणों द्वारा किसी व्यक्ति पर कोई लांछन लगाता या प्रकाशित करता है कि उस व्यक्ति की ख्याति को क्षति पहुँचे या यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए ऐसे लांछन लगाता या प्रकाशित करता है जिससे उस व्यक्ति की ख्याति को क्षति पहुँचे, तो तत्पश्चात् अपवादित दशाओं के सिवाय उसके द्वारा उस व्यक्ति की मानहानि करना कहलाएगा।

अपवाद:

- धारा 499 के अनुसार, सत्य बात का लांछन जिसका लगाया जाना या प्रकाशित किया जाना लोक कल्याण के लिये अपेक्षित है, किसी ऐसी बात का लांछन लगाना, जो किसी व्यक्ति के संबंध में सत्य हो, मानहानि नहीं है, । यह बात लोक कल्याण के लिये है या नहीं यह तथ्य का प्रश्न है ।

दंड:

- भारतीय दंड संहिता की धारा 500 के अंतर्गत मानहानि के लिये दो वर्ष तक का साधारण कारावास और जुर्माना या दोनों को एक साथ लगाने का भी प्रावधान किया गया है।

वैधता:

- सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 2014 के सुब्रहमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ मामले में आपराधिक मानहानि कानून की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा।

निशुल्क कानूनी सहायता

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में कानून एवं न्याय मंत्रालय ने लोकसभा को अखिल भारतीय कानूनी जागरूकता और आउटरीच अभियान के बारे में सूचित किया, जिसे राष्ट्रीय कानूनी सेवा दिवस (NLSD) के अवसर पर अक्तूबर 2021 में शुरू किया गया था।

सभी नागरिकों के लिये उचित, निष्पक्ष न्याय प्रक्रिया सुनिश्चित करने हेतु जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष 9 नवंबर को राष्ट्रीय कानूनी सेवा दिवस (NLSD) मनाया जाता है।

राष्ट्रीय कानूनी सेवा दिवस (NLSD) और संबंधित संवैधानिक प्रावधान:

- परिचय:
  - वर्ष 1995 में पहली बार NLSD को भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समाज के गरीब और कमज़ोर वर्गों को सहायता प्रदान करने के लिये शुरू किया गया था।
  - इसके तहत सिविल, आपराधिक और राजस्व न्यायालयों, न्यायाधिकरणों या अर्द्ध-न्यायिक कार्य करने वाले किसी अन्य प्राधिकरण के समक्ष उपस्थित मामलों में मुफ्त कानूनी सेवाएँ प्रदान की जाती हैं।
  - इस दिवस को देश के नागरिकों को कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम के तहत विभिन्न प्रावधानों और वादियों के अधिकारों से अवगत कराने हेतु मनाया जाता है। इस दिन प्रत्येक कानूनी क्षेत्राधिकार में सहायता शिविर, लोक अदालत एवं कानूनी सहायता कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।
- संवैधानिक प्रावधान:
  - अनुच्छेद 39A कहता है, राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे जिससे समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिये कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, नि:शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।
  - अनुच्छेद 14 और 22(1) भी राज्य के लिये कानून के समक्ष समानता और सभी के लिये समान अवसर के आधार पर न्याय को बढ़ावा देने वाली कानूनी व्यवस्था सुनिश्चित करना अनिवार्य बनाते हैं।

कानूनी सेवा प्राधिकरणों के उद्देश्य:

- मुफ्त कानूनी सहायता और सलाह प्रदान करना।
- कानूनी जागरूकता का प्रसार।
- लोक अदालतों का आयोजन करना।
- वैकल्पिक विवाद समाधान (Alternative Dispute Resolution- ADR) तंत्र के माध्यम से विवादों के निपटारे को बढ़ावा देना। विभिन्न प्रकार के ADR तंत्र हैं- मध्यस्थता, सुलह, न्यायिक समझौता जिसमें लोक अदालत के माध्यम से निपटान या मध्यस्थता शामिल है।
- अपराध पीड़ितों को मुआवज़ा प्रदान करना।

निशुल्क कानूनी सेवाएँ प्रदान करने के लिये कानूनी सेवा संस्थान:

- राष्ट्रीय स्तर:
  - राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (NALSA): इसका गठन कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत किया गया था। भारत का मुख्य न्यायाधीश इसका मुख्य संरक्षक है।
- राज्य स्तर:
  - राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण: इसकी अध्यक्षता राज्य उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश करता है, जो इसका मुख्य संरक्षक है।
- ज़िला स्तर:
  - ज़िला विधिक सेवा प्राधिकरण: ज़िले का ज़िला न्यायाधीश इसका पदेन अध्यक्ष होता है।
- तालुका/उप-मंडल स्तर:
  - तालुका/उप-मंडल विधिक सेवा समिति: इसकी अध्यक्षता एक वरिष्ठ सिविल जज करता है।
- उच्च न्यायालय: उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति
- सर्वोच्च न्यायालय: सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति।

निशुल्क कानूनी सेवाएँ प्राप्त करने के लिये पात्र व्यक्ति:

- महिलाएँ और बच्चे
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्य
- औद्योगिक कामगार
- सामूहिक आपदा, हिंसा, बाढ़, सूखा, भूकंप, औद्योगिक आपदा के शिकार।
- दिव्यांग व्यक्ति
- हिरासत में उपस्थित व्यक्ति वे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय संबंधित राज्य सरकार द्वारा निर्धारित राशि से कम है, अगर मामला सर्वोच्च न्यायालय से पहले किसी अन्य अदालत के समक्ष है और यदि मामला 5 लाख रुपए से कम का है तो वह सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष जाएगा।
- मानव तस्करी के शिकार या बेगार में संलग्न लोग।

लोक अदालत

चर्चा में क्यों?

लोक अदालत वैकल्पिक विवाद समाधान के सबसे प्रभावशाली उपकरण के रूप में उभरी है।

- वर्ष 2021 में कुल 1,27,87,329 मामलों का निपटारा किया गया। ई-लोक अदालतों जैसी तकनीकी प्रगति के कारण लोक अदालतें पार्टियों के दरवाज़े तक पहुँच गई हैं।

प्रमुख बिंदु:

- परिचय:
  - 'लोक अदालत' शब्द का अर्थ 'पीपुल्स कोर्ट' है और यह गांधीवादी सिद्धांतों पर आधारित है।

- सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, यह प्राचीन भारत में प्रचलित न्यायनिर्णयन प्रणाली का एक पुराना रूप है और वर्तमान में भी इसकी वैधता बरकरार है।
- यह वैकल्पिक विवाद समाधान (ADR) प्रणाली के घटकों में से एक है जो आम लोगों को अनौपचारिक, सस्ता और शीघ्र न्याय प्रदान करता है।
- पहला लोक अदालत शिविर वर्ष 1982 में गुजरात में एक स्वैच्छिक और सुलह एजेंसी के रूप में बिना किसी वैधानिक समर्थन के निर्णयों हेतु आयोजित किया गया था।
- समय के साथ इसकी बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए इसे कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत वैधानिक दर्ज़ा दिया गया था। यह अधिनियम लोक अदालतों के संगठन और कामकाज से संबंधित प्रावधान करता है।

- संगठन:
  - राज्य/ज़िला कानूनी सेवा प्राधिकरण या सर्वोच्च न्यायालय/उच्च न्यायालय/तालुका कानूनी सेवा समिति ऐसे अंतराल और स्थानों पर तथा ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने व ऐसे क्षेत्रों के लिये लोक अदालतों का आयोजन कर सकती है जिन्हें वह उचित समझे।
  - किसी क्षेत्र के लिये आयोजित प्रत्येक लोक अदालत में उतनी संख्या में सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी और क्षेत्र के अन्य व्यक्ति शामिल होंगे, जैसा कि आयोजन करने वाली एजेंसी द्वारा निर्दिष्ट किया जाएगा है।
    - सामान्यत: एक लोक अदालत में अध्यक्ष के रूप में एक न्यायिक अधिकारी, एक वकील (अधिवक्ता) और एक सामाजिक कार्यकर्त्ता सदस्य के रूप में शामिल होते हैं।
  - राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (National Legal Services Authority- NALSA) अन्य कानूनी सेवा संस्थानों के साथ लोक अदालतों का आयोजन करता है।
    - NALSA का गठन कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत 9 नवंबर, 1995 को किया गया था जो समाज के कमजोर वर्गों को मुफ्त और सक्षम कानूनी सेवाएँ प्रदान करने हेतु राष्ट्रव्यापी एक समान नेटवर्क स्थापित करने के लिये लागू हुआ था।
  - सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं से संबंधित मामलों से निपटने के लिये स्थायी लोक अदालतों की स्थापना हेतु वर्ष 2002 में कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 में संशोधन किया गया था।
- क्षेत्राधिकार:
  - लोक अदालत के पास विवाद के समाधान के लिये पक्षों के बीच समझौता या समझौता करने और तय करने का अधिकार क्षेत्र होगा:
    - किसी भी न्यायालय के समक्ष लंबित कोई मामला, या
    - कोई भी मामला जो किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आता है और उसे न्यायालय के समक्ष नहीं लाया जाता है।
  - अदालत के समक्ष लंबित किसी भी मामले को निपटान के लिये लोक अदालत में भेजा जा सकता है यदि:
    - दोनों पक्ष लोक अदालत में विवाद को निपटाने के लिए सहमत हो या कोई एक पक्ष मामले को लोक अदालत में संदर्भित करने के लिये आवेदन करता है या अदालत संतुष्ट है कि मामला लोक अदालत द्वारा हल किया जा सकता है।
    - पूर्व-मुकदमेबाज़ी के मामले में विवाद के किसी भी एक पक्ष से आवेदन प्राप्त होने पर मामले को लोक अदालत में भेजा जा सकता है।
  - वैवाहिक/पारिवारिक विवाद, आपराधिक (शमनीय अपराध) मामले, भूमि अधिग्रहण के मामले, श्रम विवाद, कामगार मुआवज़े के मामले, बैंक वसूली से संबंधित आदि मामले लोक अदालतों में उठाए जा रहे हैं।
  - हालाँकि लोक अदालत के पास किसी ऐसे मामले के संबंध में कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा जो किसी भी कानून के तहत कंपाउंडेबल अपराध से संबंधित नहीं है। दूसरे शब्दों में, जो अपराध किसी भी कानून के तहत गैर-कंपाउंडेबल हैं, वे लोक अदालत के दायरे से बाहर हैं।
- शक्तियाँ:
  - लोक अदालत के पास वही शक्तियाँ होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता (1908) के तहत एक सिविल कोर्ट में निहित होती हैं।
  - इसके अलावा एक लोक अदालत के पास अपने सामने आने वाले किसी भी विवाद के निर्धारण के लिये अपनी प्रक्रिया निर्दिष्ट करने की अपेक्षित शक्तियाँ होंगी।
  - लोक अदालत के समक्ष सभी कार्यवाही भारतीय दंड संहिता (1860) के तहत न्यायिक कार्यवाही मानी जाएगी और प्रत्येक लोक अदालत को दंड प्रक्रिया संहिता (1973) के उद्देश्य के लिये एक दीवानी न्यायालय माना जाएगा।
  - लोक अदालत का फैसला किसी दीवानी अदालत की डिक्री या किसी अन्य अदालत का आदेश माना जाएगा।
  - लोक अदालत द्वारा दिया गया प्रत्येक निर्णय विवाद के सभी पक्षों के लिये अंतिम और बाध्यकारी होगा। लोक अदालत के फैसले के खिलाफ किसी भी अदालत में कोई अपील नहीं होगी।
- महत्त्व:
  - इसके तहत कोई न्यायालय शुल्क नहीं है और यदि न्यायालय शुल्क का भुगतान पहले ही कर दिया गया है तो लोक अदालत में विवाद का निपटारा होने पर राशि वापस कर दी जाएगी।

- विवाद निपटन हेतु प्रक्रियात्मक लचीलापन और त्वरित सुनवाई होती है। लोक अदालत द्वारा दावे का मूल्यांकन करते समय प्रक्रियात्मक कानूनों को अत्यधिक सख्ती से लागू नहीं किया जाता है।
- विवाद के पक्षकार सीधे अपने वकील के माध्यम से न्यायाधीश के साथ बातचीत कर सकते हैं जो कानून की नियमित अदालतों में संभव नहीं है।
- लोक अदालत द्वारा दिया जाने वाला निर्णय सभी पक्षों के लिये बाध्यकारी होता है और इसे सिविल कोर्ट की डिक्री का दर्जा प्राप्त होता है तथा यह गैर-अपील योग्य होता है, जिससे अंततः विवादों के निपटारे में देरी नहीं होती है।

धर्मांतरण विरोधी विधेयक का मसौदा: हरियाणा

चर्चा में क्यों?

हाल ही में हरियाणा सरकार ने गैरकानूनी धर्मांतरण रोकथाम विधेयक, 2022 का मसौदा जारी किया।

- इस विधेयक का उद्देश्य धार्मिक रूपांतरणों को रोकना है। यह विधेयक गलत बयानी, ज़बरदस्ती, धोखाधड़ी, लालच या शादी के माध्यम से एक धर्म से दूसरे धर्म में धर्मांतरण पर रोक लगाता है।
- कर्नाटक, अरुणाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड जैसे अन्य राज्यों ने भी धर्म परिवर्तन को प्रतिबंधित करने वाले कानून पारित किये हैं।

धर्मांतरण विरोधी कानूनों की आवश्यकता:

- धर्मांतरण का अधिकार नहीं: संविधान प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म को मानने, अभ्यास करने और प्रचार करने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है।
  - अंत:करण और धर्म की स्वतंत्रता के व्यक्तिगत अधिकार का विस्तार धर्मांतरण के सामूहिक अधिकार के अर्थ में नहीं किया जा सकता।
  - क्योंकि धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार धर्मांतरण करने वाले और परिवर्तित होने की मांग करने वाले व्यक्ति के लिये समान रूप से है।
- कपटपूर्ण विवाह: हाल के दिनों में ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं, जिसमें लोग अपने धर्म को छुपाकर या गलत तरीके से दूसरे धर्म के व्यक्तियों के साथ शादी करते हैं तथा शादी के बाद ऐसे दूसरे व्यक्ति को अपने धर्म में परिवर्तित करने के लिये मजबूर करते हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ: हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने भी ऐसे मामलों का न्यायिक संज्ञान लिया।
  - न्यायालय के अनुसार, इस तरह की घटनाएँ न केवल धर्मांतरित व्यक्तियों की धर्म की स्वतंत्रता का उल्लंघन करती हैं, बल्कि हमारे समाज के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने के भी खिलाफ हैं।

मसौदा विधेयक के प्रावधान:

- विधेयक में नाबालिगों, महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के धर्मांतरण के संबंध में अधिक सज़ा का प्रावधान है।
- यह आरोपित पर ही इस बात को सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी डालता है कि धर्मांतरण गलत बयानी, बल प्रयोग, धमकी, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी कपटपूर्ण तरीके से शादी के उद्देश्य से नहीं हुआ था।
- एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तित होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष एक घोषणा पत्र प्रस्तुत करना होगा कि रूपांतरण किसी कपटपूर्ण तरीके से नहीं किया गया।
- इसके अलावा यह उन विवाहों को शून्य और अवैध घोषित करने का प्रावधान करता है, जो धर्म को छुपाकर किये गए हों।

भारत में धर्मांतरण विरोधी कानूनों की स्थिति:

- संवैधानिक प्रावधान: अनुच्छेद-25 के तहत भारतीय संविधान धर्म को मानने, प्रचार करने और अभ्यास करने की स्वतंत्रता की गारंटी देता है तथा सभी धर्म के वर्गों को अपने धर्म के मामलों का प्रबंधन करने की अनुमति देता है, हालाँकि यह सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन है।
  - कोई भी व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासों को ज़बरन लागू नहीं करेगा और इस प्रकार व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी भी धर्म का पालन करने के लिये मजबूर नहीं किया जाना चाहिये।
- मौजूदा कानून: धार्मिक रूपांतरणों को प्रतिबंधित या विनियमित करने वाला कोई केंद्रीय कानून नहीं है।
  - हालाँकि वर्ष 1954 के बाद से कई मौकों पर धार्मिक रूपांतरणों को विनियमित करने हेतु संसद में निजी विधेयक पेश किये गए।
  - इसके अलावा वर्ष 2015 में केंद्रीय कानून मंत्रालय ने कहा था कि संसद के पास धर्मांतरण विरोधी कानून पारित करने की विधायी शक्ति नहीं है।
  - वर्षों से कई राज्यों ने बल, धोखाधड़ी या प्रलोभन द्वारा किये गए धार्मिक रूपांतरणों को प्रतिबंधित करने हेतु 'धार्मिक स्वतंत्रता' संबंधी कानून बनाए हैं।

धर्मांतरण विरोधी कानूनों से संबद्ध मुद्दे:

- अनिश्चित और अस्पष्ट शब्दावली: गलत बयानी, बल, धोखाधड़ी, प्रलोभन जैसी अनिश्चित और अस्पष्ट शब्दावली इसके दुरुपयोग हेतु एक गंभीर अवसर प्रस्तुत करती है।

- यह काफी अधिक अस्पष्ट और व्यापक शब्दावली है, जो धार्मिक स्वतंत्रता के संरक्षण से परे भी कई विषयों को कवर करती है।
- अल्पसंख्यकों का विरोध: एक अन्य मुद्दा यह है कि वर्तमान धर्मांतरण विरोधी कानून धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु धर्मांतरण के निषेध पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं।
  - हालाँकि धर्मांतरण निषेधात्मक कानून द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली व्यापक भाषा का इस्तेमाल अधिकारियों द्वारा अल्पसंख्यकों पर अत्याचार और भेदभाव करने के लिये किया जा सकता है।
- धर्मनिरपेक्षता विरोधी: ये कानून भारत के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने और हमारे समाज के आंतरिक मूल्यों व कानूनी व्यवस्था की अंतर्राष्ट्रीय धारणा के लिये खतरा पैदा कर सकते हैं।

विवाह और धर्मांतरण पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय:

- वर्ष 2017 का हादिया मामला:
  - हादिया मामले में निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि 'अपनी पसंद के कपड़े पहनने, भोजन करने, विचार या विचारधाराओं और प्रेम तथा जीवनसाथी के चुनाव का मामला किसी व्यक्ति की पहचान के केंद्रीय पहलुओं में से एक है।
  - ऐसे मामलों में न तो राज्य और न ही कानून किसी व्यक्ति को जीवन साथी के चुनाव के बारे में कोई आदेश दे सकते हैं एवं न ही वे ऐसे मामलों में निर्णय लेने के लिये किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित कर सकते हैं।
  - अपनी पसंद के साथी के साथ विवाह करने का अधिकार अनुच्छेद-21 का अभिन्न अंग है।
- के.एस. पुट्टस्वामी या 'गोपनीयता' निर्णय 2017:
  - किसी व्यक्ति की स्वायत्तता से आशय जीवन के महत्त्वपूर्ण मामलों में उसकी निर्णय लेने की क्षमता से है।
- अन्य मामले:
  - सर्वोच्च न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में माना है कि जीवन साथी चुनने के वयस्क के पूर्ण अधिकार पर आस्था, राज्य और अदालतों का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।
  - सर्वोच्च न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में स्वीकार किया है कि जीवन साथी के चयन के मामले में एक वयस्क नागरिक के अधिकार पर राज्य और न्यायालयों का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।
  - भारत एक 'स्वतंत्र और गणतांत्रिक राष्ट्र' है तथा एक वयस्क के प्रेम एवं विवाह के अधिकार में राज्य का हस्तक्षेप व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
  - विवाह जैसे मामले किसी व्यक्ति की निजता के अंतर्गत आते हैं, जो कि उल्लंघन योग्य नहीं हैं, साथ ही विवाह या उसके बाहर जीवन साथी के चुनाव का निर्णय व्यक्ति के 'व्यक्तित्व और पहचान' का हिस्सा है।
  - किसी व्यक्ति के जीवन साथी चुनने का पूर्ण अधिकार कम-से-कम धर्म/आस्था से प्रभावित नहीं होता है।

राज्यपाल की भूमिका और शक्ति

चर्चा में क्यों?

राज्यपाल राज्य के संवैधानिक प्रमुख और केंद्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में 'दोहरी भूमिका' में कार्य करता है।

- हाल के वर्षों में राज्यों और राज्यपालों के बीच टकराव देखा गया है जो काफी हद तक सरकार बनाने, पार्टी के चयन, बहुमत साबित करने की समय-सीमा, विधेयकों पर बैठकों को आयोजित करने और राज्य प्रशासन पर नकारात्मक टिप्पणी करने को लेकर रहा है।

प्रमुख बिंदु

राज्यपाल से संबंधित संवैधानिक प्रावधान:

- अनुच्छेद 153: प्रत्येक राज्य के लिये एक राज्यपाल होगा। एक व्यक्ति को दो या दो से अधिक राज्यों का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है।
  - राज्यपाल केंद्र सरकार का एक नामित व्यक्ति होता है, जिसे राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।
- संविधान के मुताबिक, राज्य का राज्यपाल दोहरी भूमिका अदा करता है।
  - वह राज्य के मंत्रिपरिषद (CoM) की सलाह मानने को बाध्य राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है।
  - वह केंद्र सरकार और राज्य सरकार के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है।
- अनुच्छेद 157 और 158 के तहत राज्यपाल पद के लिये पात्रता संबंधी आवश्यकताओं को निर्दिष्ट किया गया है।
- राज्यपाल को संविधान के अनुच्छेद 161 के तहत क्षमादान और दंडविराम आदि की भी शक्ति प्राप्त है।
- कुछ विवेकाधीन शक्तियों के अतिरिक्त राज्यपाल को उसके अन्य सभी कार्यों में सहायता करने और सलाह देने के लिये मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिपरिषद का गठन किये जाने का प्रावधान है। (अनुच्छेद 163)
- राज्य के मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। (अनुच्छेद 164)

- राज्यपाल, राज्य की विधानसभा द्वारा पारित विधेयक को अनुमति देता है, अनुमति रोकता है अथवा राष्ट्रपति के विचार के लिये विधेयक को सुरक्षित रखता है। (अनुच्छेद 200)
- राज्यपाल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में अध्यादेशों को प्रख्यापित कर सकता है। (अनुच्छेद 213)

राज्यपाल-राज्य संबंध

- राज्यपाल की परिकल्पना एक गैर-राजनीतिक प्रमुख के रूप में की जाती है, जिसे मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करना चाहिये। हालाँकि राज्यपाल को संविधान के तहत कुछ विवेकाधीन शक्तियाँ प्राप्त हैं। उदाहरण के लिये:
  - राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधेयक को स्वीकृति देना या रोकना,
  - किसी पार्टी को बहुमत साबित करने के लिये आवश्यक समय का निर्धारण, या
  - आमतौर पर किसी चुनाव में त्रिशंकु जनादेश के बाद बहुमत साबित करने के लिये सबसे पहले किस पार्टी को बुलाया जाना चाहिये।
- राज्यपाल का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है, वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत ही पद पर बना रह सकता है।
  - वर्ष 2001 में संविधान के कामकाज की समीक्षा करने के लिये राष्ट्रीय आयोग ने माना कि राज्यपाल की नियुक्ति और संघ के लिये उसकी निरंतरता आवश्यक है।
  - ऐसी आशंका जाहिर की जाती है कि राज्यपाल प्राय: केंद्रीय मंत्रिपरिषद से प्राप्त निर्देशों के अनुसार कार्य करते हैं।
- संविधान में राज्यपाल की शक्तियों के प्रयोग के लिये कोई दिशा-निर्देश नहीं हैं, जिसमें मुख्यमंत्री की नियुक्ति या विधानसभा को भंग करना शामिल है।
- राज्यपाल कितने समय तक किसी विधेयक पर अपनी स्वीकृति रोक सकता है, इसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं है।
- राज्यपाल केंद्र सरकार को एक रिपोर्ट भेजता है, जो अनुच्छेद-356 (राष्ट्रपति शासन) को लागू करने के लिये राष्ट्रपति को केंद्रीय मंत्रिपरिषद की सिफारिशों का आधार बनाती है।

किन सुधारों का सुझाव दिया गया है?

- राज्यपाल की नियुक्ति और निष्कासन के संबंध में:
  - 'पुंछी आयोग' (2010) ने सिफारिश की थी कि राज्य विधायिका द्वारा राज्यपाल पर महाभियोग चलाने का प्रावधान संविधान में शामिल किया जाना चाहिये।
  - राज्यपाल की नियुक्ति में राज्य के मुख्यमंत्री की राय भी ली जानी चाहिये।
- अनुच्छेद-356 के संबंध में:
  - 'पुंछी आयोग' ने अनुच्छेद 355 और 356 में संशोधन करने की सिफारिश की थी।
  - 'सरकारिया आयोग' (1988) ने सिफारिश की थी कि अनुच्छेद 356 का उपयोग बहुत ही दुर्लभ मामलों में विवेकपूर्ण तरीके से ऐसी स्थिति में किया जाना चाहिये जब राज्य में संवैधानिक तंत्र को बहाल करना अपरिहार्य हो गया हो।
  - इसके अलावा प्रशासनिक सुधार आयोग (1968), राजमन्नार समिति (1971) और न्यायमूर्ति वी. चेलैया आयोग (2002) आदि ने भी इस संबंध में सिफारिशें की हैं।
- अनुच्छेद 356 के तहत राज्य सरकार की बर्खास्तगी के संबंध में:
  - एस.आर. बोम्मई मामला (1994): इस मामले के तहत केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों की मनमानी बर्खास्तगी को समाप्त कर दिया गया।
  - निर्णय के मुताबिक, विधानसभा ही एकमात्र ऐसा मंच है, जहाँ तत्कालीन सरकार के बहुमत का परीक्षण किया जाना चाहिये, न कि राज्यपाल की व्यक्तिपरक राय के आधार पर।
- विवेकाधीन शक्तियों के संबंध में:
  - नबाम रेबिया मामले (2016) में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा था कि अनुच्छेद 163 के तहत राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग सीमित है और राज्यपाल की कार्रवाई मनमानी या काल्पनिक तथ्यों के आधार पर नहीं होनी चाहिये।

विश्वविद्यालयों में राज्यपाल की भूमिका

चर्चा में क्यों?

हाल ही में गोपीनाथ रवींद्रन को कन्नूर विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में फिर से नियुक्त करने को लेकर केरल में विवाद छिड़ गया है।

- यह नियुक्ति राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति के रूप में राज्यपाल के निर्णय के खिलाफ थी।
- जबकि कुलाधिपति के रूप में राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य एक विशेष राज्य सरकार के तहत विश्वविद्यालयों को संचालित करने वाली विधियों में निर्धारित किये गए हैं, कुलपतियों की नियुक्ति में उनकी भूमिका ने अक्सर राजनीतिक कार्यपालिका के साथ विवाद को जन्म दिया है।

प्रमुख बिंदु

- राज्य विश्वविद्यालयों में राज्यपालों की भूमिका:
  - ज़्यादातर मामलों में, राज्य के राज्यपाल उस राज्य के विश्वविद्यालयों के पदेन कुलाधिपति होते हैं।

- राज्यपाल के रूप में वह मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह से कार्य करता है, कुलाधिपति के रूप में वह स्वतंत्र रूप से मंत्रिपरिषद से कार्य करता है तथा विश्वविद्यालय के सभी मामलों पर निर्णय लेता है।

- केंद्रीय विश्वविद्यालयों का मामला:
  - केंद्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 और अन्य विधियों के तहत, भारत के राष्ट्रपति एक केंद्रीय विश्वविद्यालय के कुलाध्यक्ष होंगे।
  - दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता करने तक सीमित उनकी भूमिका के साथ, केंद्रीय विश्वविद्यालयों में कुलाधिपति नाममात्र के प्रमुख होते हैं, जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा आगंतुक के रूप में नियुक्त किया जाता है।
  - कुलपति को भी केंद्र सरकार द्वारा गठित खोज और चयन समितियों द्वारा चुने गए नामों के पैनल से विज़िटर द्वारा नियुक्त किया जाता है।
  - अधिनियम में यह भी कहा गया है कि राष्ट्रपति को कुलाध्यक्ष के रूप में विश्वविद्यालयों के शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक पहलुओं के निरीक्षण को अधिकृत करने और पूछताछ करने का अधिकार होगा।

- राज्यपाल से संबंधित संवैधानिक प्रावधान:
  - संविधान के मुताबिक, राज्य का राज्यपाल दोहरी भूमिका अदा करता है:
    - वह राज्य के मंत्रिपरिषद (CoM) की सलाह मानने को बाध्य राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है।
    - वह केंद्र सरकार और राज्य सरकार के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है।
  - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 153 के तहत प्रत्येक राज्य के लिये एक राज्यपाल का प्रावधान किया गया है। एक व्यक्ति को दो या दो से अधिक राज्यों के राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।
    - राज्यपाल केंद्र सरकार का एक नामित व्यक्ति होता है, जिसे राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।
  - अनुच्छेद 163: कुछ विवेकाधीन शक्तियों के अतिरिक्त राज्यपाल को उसके अन्य सभी कार्यों में सहायता करने और सलाह देने के लिये मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिपरिषद का गठन किये जाने का प्रावधान है।
  - अनुच्छेद 200: राज्यपाल, राज्य की विधानसभा द्वारा पारित विधेयक को अनुमति देता है, अनुमति रोकता है अथवा राष्ट्रपति के विचार के लिये विधेयक को सुरक्षित रखता है।
  - अनुच्छेद 213: राज्यपाल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में अध्यादेशों को प्रख्यापित कर सकता है।

- राज्यपाल की भूमिका संबंधित विवाद
  - केंद्र सरकार द्वारा सत्ता का दुरुपयोग: प्राय: केंद्र में सत्ताधारी दल के निर्देश पर राज्यपाल के पद के दुरुपयोग के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं।
    - राज्यपाल की नियुक्ति की प्रकिया को इसमें एक प्रमुख कारण माना जाता है।
  - पक्षपाती विचारधारा: कई मामलों में एक विशेष राजनीतिक विचारधारा वाले राजनेताओं और पूर्व नौकरशाहों को केंद्र सरकार द्वारा राज्यपालों के रूप में नियुक्त किया जाता है।
    - यह संवैधानिक रूप से अनिवार्य तटस्थ पद के पूर्ण विरुद्ध है और यह पक्षपात को जन्म देता है, जैसा कि कर्नाटक तथा गोवा के मामलों में देखा गया।
  - कठपुतली शासक: हाल ही में राजस्थान के राज्यपाल पर आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है।
    - केंद्रीय सत्ताधारी दल के प्रति उनका समर्थन गैर-पक्षपात की भावना के विरुद्ध है जिसकी अपेक्षा संवैधानिक पद पर आसीन व्यक्ति से की जाती है।
    - ऐसी घटनाओं के कारण ही राज्य के राज्यपाल के लिये केंद्र के एजेंट, कठपुतली और रबर स्टैम्प जैसे नकारात्मक शब्दों का उपयोग किया जाता है।
  - एक विशेष राजनीतिक दल का पक्ष लेना: चुनाव के बाद सबसे बड़ी पार्टी/गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करने की राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों का प्राय: किसी विशेष राजनीतिक दल के पक्ष में दुरुपयोग किया जाता है।
  - शक्ति का अनुचित उपयोग: प्राय: यह देखा गया है कि किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356) के लिये राज्यपाल की सिफारिश सदैव 'तथ्यों' पर आधारित न होकर राजनीतिक भावना और पूर्वाग्रह पर आधारित होती है।

- राज्यपाल के पद से संबंधित सिफारिशें:
  - राज्यपाल की नियुक्ति और निष्कासन के संबंध में
    - 'पुंछी आयोग' (2010) ने सिफारिश की थी कि राज्य विधायिका द्वारा राज्यपाल पर महाभियोग चलाने का प्रावधान संविधान में शामिल किया जाना चाहिये।
    - राज्यपाल की नियुक्ति में राज्य के मुख्यमंत्री की राय भी ली जानी चाहिये।
  - अनुच्छेद 356 के संबंध में
    - 'पुंछी आयोग' ने अनुच्छेद 355 और 356 में संशोधन करने की सिफारिश की थी।
    - 'सरकारिया आयोग' (1988) ने सिफारिश की थी कि अनुच्छेद 356 का उपयोग बहुत ही दुर्लभ मामलों में विवेकपूर्ण तरीके से ऐसी स्थिति में किया जाना चाहिये जब राज्य में संवैधानिक तंत्र को बहाल करना अपरिहार्य हो गया हो।

- इसके अलावा प्रशासनिक सुधार आयोग (1968), राजमन्नार समिति (1971) और न्यायमूर्ति वी. चेलैया आयोग (2002) आदि ने भी इस संबंध में सिफारिशें की हैं।
- अनुच्छेद 356 के तहत राज्य सरकार की बर्खास्तगी के संबंध में
  - एस.आर. बोम्मई मामला (1994): इस मामले के तहत केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों की मनमानी बर्खास्तगी को समाप्त कर दिया गया।
  - निर्णय के मुताबिक, विधानसभा ही एकमात्र ऐसा मंच है, जहाँ तत्कालीन सरकार के बहुमत का परीक्षण करना चाहिये, न कि राज्यपाल की व्यक्तिपरक राय के आधार पर।
- विवेकाधीन शक्तियों के संबंध में
  - नबाम रेबिया मामले (2016) में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा था कि अनुच्छेद 163 के तहत राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग सीमित है और राज्यपाल की कार्रवाई मनमानी या काल्पनिक तथ्यों के आधार पर नहीं होनी चाहिये।

विधेयकों पर निर्णय लेने का राज्यपाल का अधिकार: वीटो पावर

चर्चा में क्यों?

हाल ही में तमिलनाडु विधानसभा के अध्यक्ष ने विधेयकों पर निर्णय लेने के लिये एक बाध्यकारी समयसीमा निर्धारित करने का आह्वान किया, जिसके भीतर विधेयकों को राज्यपाल द्वारा भारत के राष्ट्रपति के विचार के लिये सहमति या वापस या आरक्षित किया जाना चाहिये।

प्रमुख बिंदु

- अध्यक्ष द्वारा उठाए गए मुद्दे:
  - राज्यपाल से संबंधित:
    - राज्यपाल कभी-कभी बिना अनुमति दिये या अनिश्चित काल के लिये विधेयक को पुनर्विचार के लिये वापस किये बिना सुरक्षित रख लेता है, जबकि संविधान में इस प्रक्रिया को जल्द-से-जल्द करने की आवश्यकता है।
    - राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की सहमति के लिये विधेयकों को आरक्षित रखा जाता है जिसमें कई महीने लग जाते थे, जबकि इसे तुरंत किया जाना था।
    - इससे विधायिकाओं और राज्यपालों के अधिकार समाप्त हो जाते हैं, हालाँकि राज्य कार्यकारिणी के प्रमुखों की नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा की जाती है।
  - राष्ट्रपति से संबंधित:
    - भारत के राष्ट्रपति को भी स्वीकृति रोकने और विधेयक को वापस करने का कारण बताना चाहिये।
    - इससे सदन को उन कमियों को दूर करके एक अन्य विधेयक बनाने में मदद मिलेगी जिसके कारण विधेयक को खारिज कर दिया गया था।
- संबंधित उदाहरण:
  - सितंबर 2021 में तमिलनाडु विधानसभा द्वारा पारित एक विधेयक के आलोक में अध्यक्ष का वक्तव्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जिसमें राज्य के छात्रों को स्नातक मेडिकल कॉलेज में प्रवेश के लिये आवश्यक राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा (NEET) में छूट देने की मांग की गई है।
  - राजीव गांधी हत्याकांड में दोषी ठहराए गए सात कैदियों की रिहाई के संबंध में तमिलनाडु विधानसभा ने वर्ष 2018 में एक प्रस्ताव पारित किया था।
    - प्रस्ताव तत्कालीन राज्यपाल को भेजा गया था लेकिन उन्होंने दो साल से अधिक समय तक कोई कार्रवाई नहीं की।
    - जनवरी 2021 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक याचिका पर सुनवाई के दौरान हुई देरी के लिये नाराज़गी व्यक्त की।
    - फरवरी में राज्यपाल ने इस पर बिना कोई विचार किये निर्णय लेने का उत्तरदायित्व राष्ट्रपति पर छोड़ दिया और कहा कि राष्ट्रपति विधेयक पर निर्णय लेने के लिये सक्षम प्राधिकारी है।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की वीटो शक्ति

- परिचय:
  - भारत के राष्ट्रपति की वीटो पावर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 111 द्वारा निर्देशित है।
  - भारतीय संविधान का अनुच्छेद 200 राज्य विधायिका द्वारा पारित विधेयकों को दी गई सहमति के संबंध में राज्यपाल की शक्तियों और राज्यपाल की अन्य शक्तियों जैसे राष्ट्रपति के विचार के लिये विधेयक को आरक्षित करने से संबंधित है।
  - अनुच्छेद 201 'विचार के लिये आरक्षित विधेयक' (Bills Reserved for Consideration) से संबंधित है।
  - भारत के राज्यपाल को पूर्ण वीटो, निलंबन वीटो (धन विधेयकों को छोड़कर) का अधिकार प्राप्त है, लेकिन पॉकेट वीटो का नहीं।
- वीटो पावर के तीन प्रकार: पूर्ण वीटो, निरोधात्मक वीटो और पॉकेट वीटो।

- अपवाद: जब संवैधानिक संशोधन विधेयकों की बात आती है तो राष्ट्रपति के पास कोई वीटो शक्ति नहीं होती है।
  - संविधान संशोधन विधेयक को राज्य विधानमंडल में पेश नहीं किया जा सकता है।
- पूर्ण वीटो: यह संसद द्वारा पारित किसी विधेयक पर राष्ट्रपति को अपनी सहमति को रोकने की शक्ति को संदर्भित करता है। इसके बाद बिल समाप्त हो जाता है और अधिनियम नहीं बनता है।
- निलंबित वीटो: जब राष्ट्रपति भारतीय संसद में पुनर्विचार के लिये विधेयक को लौटाता है तो वह इसके लिये निलंबन वीटो का उपयोग करता है।
  - यदि संसद राष्ट्रपति को संशोधन के साथ या बिना संशोधन के विधेयक को फिर से भेजती है, तो उसे अपनी किसी भी वीटो शक्ति का उपयोग किये बिना विधेयक को मंज़ूरी देनी होगी।
  - अपवाद: राष्ट्रपति धन विधेयक के संबंध में अपने निलंबन वीटो का प्रयोग नहीं कर सकता।
- पॉकेट वीटो: राष्ट्रपति द्वारा पॉकेट वीटो का प्रयोग कर विधेयक को अनिश्चित काल के लिये लंबित रखा जाता है।
  - वह न तो विधेयक को अस्वीकार करता है और न ही विधेयक को पुनर्विचार के लिये लौटाता है।
  - अमेरिकी राष्ट्रपति के विपरीत, जिसे 10 दिनों के भीतर बिल को फिर से भेजना होता है, भारतीय राष्ट्रपति के पास ऐसा कोई समय की बाध्यता नहीं है।
- राज्य के विधेयकों पर वीटो:
  - राज्यपाल को राष्ट्रपति के विचार के लिये राज्य विधायिका द्वारा पारित कुछ प्रकार के विधेयकों को आरक्षित करने का अधिकार है।
    - फिर विधेयक के अधिनियमन में राज्यपाल की कोई और भूमिका नहीं होगी।
  - राष्ट्रपति ऐसे विधेयकों पर न केवल पहली बार बल्कि दूसरी बार आने पर भी अपनी सहमति को स्थगित कर सकता है।
    - इस प्रकार राष्ट्रपति को राज्य के बिलों पर पूर्ण वीटो (और निलंबन वीटो नहीं) प्राप्त है।
  - इसके अलावा राष्ट्रपति राज्य विधान के संबंध में भी पॉकेट वीटो का प्रयोग कर सकता है।

मुख्यमंत्री

चर्चा में क्यों?

हाल ही में पुष्कर सिंह धामी ने उत्तराखंड के 11वें मुख्यमंत्री (CM) के रूप में शपथ ग्रहण की।

- उन्होंने वर्ष 2022 की शुरुआत में होने वाले विधानसभा चुनावों से कुछ महीने पहले ही पदभार ग्रहण किया है।

प्रमुख बिंदु

नियुक्ति:

- संविधान के अनुच्छेद 164 यह प्रावधान करता है कि मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा।
  - विधानसभा चुनावों में पार्टी के एक बहुमत प्राप्त नेता को राज्य के मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किया जाता है।
  - राज्यपाल के पास नाममात्र का कार्यकारी अधिकार है, लेकिन वास्तविक कार्यकारी अधिकार मुख्यमंत्री के पास है।
  - हालाँकि राज्यपाल द्वारा प्राप्त विवेकाधीन शक्तियाँ राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री की शक्ति, अधिकार, प्रभाव, प्रतिष्ठा और भूमिका को कुछ हद तक कम कर देती हैं।
- एक व्यक्ति जो राज्य विधानसभा का सदस्य नहीं है, उसे छह महीने के लिये मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किया जा सकता है, उस समयसीमा के भीतर उसे राज्य विधानसभा की सदस्यता ग्रहण करनी होगी, ऐसा न करने पर उसे मुख्यमंत्री पद का त्याग करना होता है।

CM का कार्यकाल:

- मुख्यमंत्री का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है और वह राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है।
  - राज्यपाल द्वारा उसे तब तक बर्खास्त नहीं किया जा सकता जब तक कि विधानसभा में बहुमत प्राप्त होता है।
- यदि वह विधानसभा में विश्वास मत खो देता है तो उसे त्यागपत्र दे देना चाहिये अन्यथा राज्यपाल उसे बर्खास्त कर सकता है।

शक्तियाँ एवं कार्य:

- मंत्रिपरिषद के संबंध में:
  - राज्यपाल केवल उन्हीं व्यक्तियों को मंत्री के रूप में नियुक्त करता है जिनकी सिफारिश मुख्यमंत्री द्वारा की जाती है।
  - वह मंत्रियों के बीच विभागों का आवंटन और फेरबदल करता है।
  - वह पद से इस्तीफा देकर मंत्रिपरिषद का विघटन कर सकता है, क्योंकि मुख्यमंत्री मंत्रिपरिषद का प्रमुख होता है।
- राज्यपाल के संबंध में:
  - संविधान के अनुच्छेद 167 के तहत राज्यपाल और राज्य मंत्रिपरिषद के बीच मुख्यमंत्री एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।
  - मुख्यमंत्री द्वारा महाधिवक्ता, राज्य लोक सेवा आयोग, राज्य चुनाव आयोग आदि के अध्यक्ष और सदस्यों जैसे महत्त्वपूर्ण अधिकारियों की नियुक्ति के संबंध में राज्यपाल को सलाह दी जाती है।

- राज्य विधानमंडल के संबंध में:
  - सभी नीतियों की घोषणा उसके द्वारा सदन के पटल पर की जाती है।
  - वह राज्यपाल को विधानसभा भंग करने की सिफारिश करता है।
- अन्य कार्य:
  - वह राज्य योजना बोर्ड का अध्यक्ष होता है।
  - वह संबंधित क्षेत्रीय परिषद के क्रमवार उपाध्यक्ष के रूप में कार्य करता है और एक समय में इसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है।
  - वह अंतर-राज्य परिषद और नीति आयोग का सदस्य होता है, इन दोनों परिषदों की अध्यक्षता प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।
  - वह राज्य सरकार का मुख्य प्रवक्ता होता है।
  - आपातकाल के दौरान राजनीतिक स्तर पर वह मुख्य प्रबंधक होता है।
  - राज्य के एक नेता के रूप में वह लोगों के विभिन्न वर्गों से मिलता है और उनकी समस्याओं के बारे में ज्ञापन प्राप्त करता है।
  - वह सेवाओं का राजनीतिक प्रमुख है।

संघ' या 'केंद्र' सरकार

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में तमिलनाडु सरकार ने अपने आधिकारिक पत्राचार या संचार में 'केंद्र सरकार' (Central Government) शब्द के उपयोग को बंद करने एवं इसके स्थान पर 'संघ सरकार' (Union Government) शब्द का उपयोग करने का फैसला किया है।

- सामान्य तौर पर भारत में "संघ सरकार" और "केंद्र सरकार" शब्दों का उपयोग किया जाता है। हालाँकि संविधान सभा के मूल संविधान के 22 भागों में 395 अनुच्छेदों और आठ अनुसूचियों को पढ़ने के बाद यह कहा जा सकता है कि 'केंद्र' या 'केंद्र सरकार' शब्द का उपयोग कहीं भी नहीं किया गया है।

प्रमुख बिंदु

संविधान सभा का पक्ष :

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1(1) में कहा गया है, "भारत, जो कि भारत है, राज्यों का एक संघ होगा।"
- 13 दिसंबर, 1946 को जवाहरलाल नेहरू ने इस संकल्प के माध्यम से संविधान सभा के लक्ष्यों और उद्देश्यों को पेश किया था कि भारत, "स्वतंत्र संप्रभु गणराज्य" में शामिल होने के इच्छुक क्षेत्रों का एक संघ होगा।
  - एक मज़बूत संयुक्त देश बनाने के लिये विभिन्न प्रांतों और क्षेत्रों के एकीकरण और संधि पर जोर दिया गया था।
- 1948 में संविधान का मसौदा प्रस्तुत करते समय मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. बी आर अंबेडकर ने कहा था कि समिति ने 'संघ' शब्द का इस्तेमाल किया था क्योंकि:
  - (a) भारतीय संघ इकाइयों द्वारा एक समझौते का परिणाम नहीं था और
  - (b) घटक इकाइयों को संघ से अलग होने की कोई स्वतंत्रता नहीं थी।
- संविधान सभा के सदस्य संविधान में 'केंद्र' या 'केंद्र सरकार' शब्द का प्रयोग न करने के लिये बहुत सतर्क थे क्योंकि उनका उद्देश्य एक इकाई में शक्तियों के केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को दूर रखना था।

'संघ' और 'केंद्र' का अर्थ:

- संविधान विशेषज्ञ सुभाष कश्यप के अनुसार, शाब्दिक दृष्टि से 'केंद्र' एक वृत्त के मध्य में एक बिंदु को इंगित करता है, जबकि 'संघ' संपूर्ण वृत्त है।
  - भारत में संविधान के अनुसार, 'केंद्र' और राज्यों के बीच का संबंध वास्तव में संपूर्ण और उसके हिस्सों के बीच का संबंध है।
- संघ और राज्य दोनों संविधान द्वारा बनाई गई इकाइयाँ हैं और दोनों को संविधान के माध्यम से अपने-अपने अधिकार प्राप्त हैं।
  - एक इकाई अपने स्वतंत्र क्षेत्र में दूसरी इकाई के अधीन नहीं है और एक का अधिकार दूसरे के साथ समन्वित है।
- इसी प्रकार भारतीय संविधान में न्यायपालिका को यह सुनिश्चित करने के लिये डिज़ाइन किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय, जो कि देश की सबसे ऊँची अदालत है, का उच्च न्यायालय पर कोई अधीक्षण नहीं है।
  - यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार न केवल उच्च न्यायालयों पर बल्कि अन्य न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर भी है, किंतु उन्हें इसके अधीनस्थ घोषित नहीं किया जा सकता है।
  - वास्तव में उच्च न्यायालयों के पास ज़िला और अधीनस्थ न्यायालयों पर अधीक्षण की शक्ति होने के बावजूद विशेषाधिकार रिट जारी करने की व्यापक शक्तियाँ हैं।
- सामान्य शब्दों में 'संघ', संघीय भावना को इंगित करता है, जबकि 'केंद्र' एकात्मक सरकार की भावना को इंगित करता है।
  - किंतु व्यावहारिक रूप से दोनों शब्द भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में समान हैं।

संघीय बनाम एकात्मक सरकार

संघीय सरकार	एकात्मक सरकार
द्वैध शासन व्यवस्था (केंद्र और प्रांत)	एकात्मक सरकार- केवल केंद्र सरकार (प्रांतीय सरकार केंद्र सरकार द्वारा गठित की जाती है)
लिखित संविधान	लिखित (फ्राँस) और अलिखित (ब्रिटेन) संविधान
केंद्र और राज्य सरकार के बीच शक्तियों का विभाजन	शक्तियों का विभाजन नहीं
संविधान की सर्वोच्चता	संविधान की सर्वोच्चता की गारंटी नहीं
कठोर संविधान	लचीला (ब्रिटेन) और कठोर (फ्राँस) संविधान
स्वतंत्र न्यायपालिका	न्यायपालिका स्वतंत्र हो सकती है अथवा नहीं
द्विसदनीय विधायिका	द्विसदनीय और एक सदनीय विधायिका

केंद्र सरकार पद से संबद्ध मुद्दे

- संविधान सभा द्वारा खारिज: संविधान में 'केंद्र' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है; संविधान निर्माताओं ने इसे विशेष रूप से खारिज कर दिया और इसके बजाय 'संघ' शब्द का इस्तेमाल किया।
- औपनिवेशिक विरासत: 'केंद्र' औपनिवेशिक काल का अवशेष है और नौकरशाही केंद्रीय कानून, केंद्रीय विधायिका आदि शब्द का उपयोग करने की आदी हो गई है, इसलिये मीडिया सहित अन्य सभी ने इस शब्द का उपयोग करना शुरू कर दिया।
- संघवाद के विचार के साथ संघर्ष: भारत एक संघीय सरकार है। शासन करने की शक्ति पूरे देश के लिये एक सरकार के बीच विभाजित है, जो सामान्य राष्ट्रीय हित के विषयों और राज्यों हेतु ज़िम्मेदार है, जो राज्य के विस्तृत दिन-प्रतिदिन के शासन की देखभाल करती है।
  - सुभाष कश्यप के अनुसार, 'केंद्र' या 'केंद्र सरकार' शब्द का उपयोग करने का मतलब होगा कि राज्य सरकारें इसके अधीन हैं।

जम्मू-कश्मीर परिसीमन आयोग की अंतरिम रिपोर्ट

चर्चा में क्यों?

हाल ही में अपनी अंतरिम रिपोर्ट में जम्मू-कश्मीर (J&K) परिसीमन आयोग ने जम्मू-कश्मीर के चुनावी मानचित्र में महत्त्वपूर्ण बदलाव का प्रस्ताव दिया है।

- राज्य में परिसीमन की कवायद जून, 2021 में शुरू हुई थी।

जम्मू-कश्मीर निर्वाचन क्षेत्रों का पूर्व वितरण:

- पूर्व में जम्मू-कश्मीर राज्य में 87 सदस्यीय विधानसभा थी, जिसमें जम्मू क्षेत्र में 37, कश्मीर संभाग में 46 और लद्दाख में 4 निर्वाचन क्षेत्र थे। इसके अलावा 24 सीटें पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (पीओके) के लिये आरक्षित थीं।
- 5 अगस्त, 2019 को अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू-कश्मीर की विशेष स्थिति को निरस्त करने के बाद इसने अपना विशेष दर्जा खो दिया और यह दो केंद्रशासित प्रदेशों (जम्मू-कश्मीर और लद्दाख) में विभाजित हो गया।

जम्मू-कश्मीर परिसीमन आयोग की प्रमुख सिफारिशें:

- परिचय:
  - विधानसभा क्षेत्रों में वृद्धि:
    - आयोग ने जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 के तहत प्रदत्त जनादेश के अनुसार, जम्मू-कश्मीर में सात विधानसभा क्षेत्रों को जोड़ा।
    - अंतरिम रिपोर्ट में जम्मू प्रांत के लिये छह सीटों की वृद्धि का प्रस्ताव है जिसमें निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या को 43 करना, कश्मीर प्रांत में एक सीट की वृद्धि तथा सीटों की संख्या को 47 तक करना और दोनों क्षेत्रों को लगभग एक-दूसरे के बराबर लाना शामिल है।
    - आयोग ने जम्मू-कश्मीर में अधिकांश विधानसभा क्षेत्रों की सीमाओं को फिर से निर्धारित करने का सुझाव दिया है। इसने 28 नए निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्गठन किया है तथा 19 विधानसभा क्षेत्रों को हटा दिया है।
  - विधानसभाओं में आरक्षण:
    - आयोग ने अनुसूचित जातियों (SCs) के हिंदुओं के लिये सात सीटें आरक्षित करने का प्रस्ताव किया है जो मुख्य रूप से सांबा-कठुआ-जम्मू-उधमपुर बेल्ट में निवास करती हैं और अनुसूचित जनजातियों (STs) के लिये नौ सीटें आरक्षित करने का प्रस्ताव है जो जम्मू प्रांत में राजौरी-पुंछ बेल्ट में रहने वाले ज़्यादातर गैर-कश्मीरी भाषी मुसलमानों, गुर्जर और बकरवाल के लिये मददगार साबित होंगी।

- लोकसभा की सीटों में वृद्धि:
  - आयोग ने लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्निर्धारण का प्रस्ताव किया है। जम्मू-कश्मीर में पाँच संसदीय क्षेत्र हैं, जिसमें कश्मीर से तीन सीटें और जम्मू से दो सीटें शामिल हैं।
  - इसने दक्षिण कश्मीर के तीन ज़िलों तथा पीरपंजाल घाटी के दो ज़िलों राजौरी और पुंछ को मिलाकर एक लोकसभा सीट का प्रस्ताव दिया है तथा इसका नाम अनंतनाग-राजौरी सीट होगा।
- आलोचना:
  - कश्मीर में अधिकआबादी:
    - इस सीट के बँटवारे की इस आधार पर आलोचना की गई कि कश्मीर प्रांत की जनसंख्या 68.88 लाख है, जबकि जम्मू प्रांत में 53.50 लाख लोग निवास करते हैं।
    - हालाँकि आयोग का तर्क है कि उसने स्थलाकृति, संचार के साधन और उपलब्ध सुविधा को ध्यान में रखकर इन सीटों का बटवारा किया है, न कि केवल जनसंख्या के आकार को।
  - पुनर्गठन असंवैधानिक:
    - यह दावा किया गया है कि जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 "स्पष्ट रूप से असंवैधानिक" था और इसे पहले ही सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा चुकी है।
  - विवेकाधीन प्रक्रिया:
    - आलोचकों ने आयोग द्वारा जम्मू-कश्मीर के मामले में लागू किये गए फॉर्मूले पर भी सवाल उठाया है और आयोग की रिपोर्ट को एक मनमानी/विवेकाधीन प्रक्रिया करार दिया है, रिपोर्ट में इलाके/क्षेत्रों की आबादी को नज़रअंदाज किया गया है जो विधानसभा और संसदीय क्षेत्रों की सीमाओं को पुन: परिभाषित करने हेतु एक बुनियादी मानदंड है।

परिसीमन:

- निर्वाचन आयोग के अनुसार, किसी देश या एक विधायी निकाय वाले प्रांत में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों (विधानसभा या लोकसभा सीट) की सीमाओं को तय करने या फिर से परिभाषित करने का कार्य परिसीमन है।
- परिसीमन अभ्यास (Delimitation Exercise) एक स्वतंत्र उच्च शक्ति वाले पैनल द्वारा किया जाता है जिसे परिसीमन आयोग के रूप में जाना जाता है, जिसके आदेशों में कानून का बल होता है और किसी भी न्यायालय द्वारा इस पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है।
- किसी निर्वाचन क्षेत्र के क्षेत्रफल को उसकी जनसंख्या के आकार (पिछली जनगणना) के आधार पर फिर से परिभाषित करने के लिये वर्षों से अभ्यास किया जाता रहा है।
- एक निर्वाचन क्षेत्र की सीमाओं को बदलने के अलावा इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप राज्य में सीटों की संख्या में भी परिवर्तन हो सकता है।
- संविधान के अनुसार, इसमें अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) के लिये विधानसभा सीटों का आरक्षण भी शामिल है।

उद्देश्य:

- परिसीमन का उद्देश्य समय के साथ जनसंख्या में हुए बदलाव के बाद भी सभी नागरिकों के लिये समान प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है। जनसंख्या के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का उचित विभाजन करना ताकि प्रत्येक वर्ग के नागरिकों को प्रतिनिधित्व का समान अवसर प्रदान किया जा सके।

परिसीमन का संवैधानिक आधार:

- प्रत्येक जनगणना के बाद भारत की संसद द्वारा संविधान के अनुच्छेद-82 के तहत एक परिसीमन अधिनियम लागू किया जाता है।
- अनुच्छेद 170 के तहत राज्यों को भी प्रत्येक जनगणना के बाद परिसीमन अधिनियम के अनुसार क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है।
- एक बार अधिनियम लागू होने के बाद केंद्र सरकार एक परिसीमन आयोग का गठन करती है।
  - परिसीमन आयोग प्रत्येक जनगणना के बाद संसद द्वारा परिसीमन अधिनियम लागू करने के बाद अनुच्छेद 82 के तहत गठित एक स्वतंत्र निकाय है।
- हालाँकि पहला परिसीमन अभ्यास राष्ट्रपति द्वारा (निर्वाचन आयोग की मदद से) 1950-51 में किया गया था।
- 1952, 1962, 1972 और 2002 के अधिनियमों के आधार पर चार बार 1952, 1963, 1973 और 2002 में परिसीमन आयोगों का गठन किया गया है।
  - वर्ष 1981 और वर्ष 1991 की जनगणना के बाद परिसीमन नहीं किया गया।

परिसीमन आयोग की संरचना:

- परिसीमन आयोग का गठन भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है और यह भारतीय निर्वाचन आयोग के सहयोग से काम करता है।
- संरचना:
  - सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश।

- मुख्य चुनाव आयुक्त।
- संबंधित राज्य चुनाव आयुक्त।

परिसीमन की आवश्यकता क्यों?

- देश के विभिन्न भागों के साथ-साथ एक ही राज्य के भीतर विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में जनसंख्या की असमान वृद्धि।
- साथ ही लोगों/निर्वाचकों के एक स्थान से दूसरे स्थान, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर निरंतर प्रवास के परिणामस्वरूप एक ही राज्य के भीतर भी विभिन्न आकार के चुनावी क्षेत्र हैं।

परिसीमन के मुद्दे:

- जो राज्य जनसंख्या नियंत्रण में कम रुचि लेते हैं उन्हें संसद में अधिक संख्या में सीटें मिल सकती हैं। परिवार नियोजन को बढ़ावा देने वाले दक्षिणी राज्यों को अपनी सीटें कम होने की संभावना का सामना करना पड़ा।
- वर्ष 2002-08 तक परिसीमन जनगणना 2001 के आधार पर की गई थी लेकिन वर्ष 1971 की जनगणना के अनुसार, विधानसभाओं और संसद में तय की गई सीटों की कुल संख्या में कोई बदलाव नहीं किया गया था।
- संविधान ने लोकसभा एवं राज्यसभा सीटों की संख्या को क्रमश: 550 तथा 250 तक सीमित कर दिया है और बढ़ती जनसंख्या का प्रतिनिधित्व एक ही प्रतिनिधि द्वारा किया जा रहा है।

असम-मेघालय सीमा विवाद

चर्चा में क्यों?

21 जनवरी, 2022 में को मेघालय राज्य के 50वें स्थापना दिवस समारोह से पूर्व, गृह मंत्री द्वारा असम-मेघालय सीमा के छह क्षेत्रों में विवाद को समाप्त करने के लिये अंतिम समझौते पर मुहर लगाए जाने की उम्मीद है।

प्रमुख बिंदु

- असम-मेघालय सीमा विवाद के बारे में:
  - असम और मेघालय दोनों राज्य 885 किलोमीटर लंबी सीमा साझा करते हैं। फिलहाल उनकी सीमाओं पर 12 बिंदुओं पर विवाद है।
  - असम-मेघालय सीमा विवाद ऊपरी ताराबारी, गज़ांग आरक्षित वन, हाहिम, लंगपीह, बोरदुआर, बोकलापारा, नोंगवाह, मातमुर, खानापारा-पिलंगकाटा, देशदेमोराह ब्लॉक I और ब्लॉक II, खंडुली और रेटचेरा के क्षेत्रों पर हैं।
  - मेघालय को असम पुनर्गठन अधिनियम, 1971 के तहत असम से अलग किया गया, यह कानून जिसे मेघालय द्वारा चुनौती दी गई विवाद का कारण बना।
- विवाद का प्रमुख बिंदु:
  - असम और मेघालय के बीच विवाद का एक प्रमुख बिंदु असम के कामरूप ज़िले की सीमा से लगे पश्चिम गारो हिल्स में लंगपीह ज़िला है।
  - लंगपीह ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान कामरूप ज़िले का हिस्सा था, लेकिन आज़ादी के बाद यह गारो हिल्स और मेघालय का हिस्सा बन गया।
    - असम इसे मिकिर पहाड़ियों (असम में स्थित) का हिस्सा मानता है।
    - मेघालय ने मिकिर हिल्स के ब्लॉक I और II पर सवाल उठाया है, जो अब कार्बी आंगलोंग क्षेत्र असम का हिस्सा है। मेघालय का कहना है कि ये तत्कालीन यूनाइटेड खासी और जयंतिया हिल्स ज़िलों के हिस्से थे।
- विवादों को सुलझाने के प्रयास:
  - असम और मेघालय दोनों ने सीमा विवाद निपटान समितियों का गठन किया है।
  - सीमा विवादों को चरणबद्ध तरीके से हल करने के लिये दो क्षेत्रीय समितियों का गठन करने का निर्णय लिया गया है और सीमा विवाद को हल करते समय पाँच पहलुओं पर विचार किया जाएगा।
    - वे ऐतिहासिक तथ्य, जातीयता, प्रशासनिक सुविधा, संबंधित लोगों की मनोदशा और भूमि से निकटता हैं।
  - पहले चरण में छह स्थलों पर विचार किया जा रहा है। ये ताराबारी, गिजांग, हाहिम, बकलापारा, खानापारा-पिलिंगकाटा और रातचेरा हैं।
  - ये विवादित क्षेत्र असम की तरफ कछार, कामरूप मेट्रो और कामरूप ग्रामीण तथा मेघालय की तरफ पश्चिम खासी हिल्स, री भोई ज़िले व पूर्वी जयंतिया हिल्स का हिस्सा हैं।
- असम और सीमा मुद्दे:
  - पूर्वोत्तर के राज्य बड़े पैमाने पर असम से जुड़े हुए हैं, जिसका कई राज्यों के साथ सीमा विवाद है।
  - अरुणाचल प्रदेश और नगालैंड के साथ असम के सीमा विवाद सर्वोच्च न्यायालय में लंबित हैं।
  - मिजोरम के साथ असम के सीमा विवाद फिलहाल बातचीत के जरिये समाधान के चरण में हैं।
- विभिन्न राज्यों के बीच अन्य सीमा विवाद:
  - बेलागवी सीमा विवाद (कर्नाटक और महाराष्ट्र के मध्य)
  - ओडिशा सीमा विवाद

कृष्णा जल विवाद

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के दो जजों ने आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच कृष्णा नदी जल के बँटवारे के विवाद से जुड़े एक मामले की सुनवाई से खुद को अलग कर लिया है।

- उन्होंने इसका कारण बताया कि वे पक्षपात का निशाना नहीं बनना चाहते क्योंकि विवाद उनके गृह राज्यों से संबंधित है।

न्यायाधीशों का बहिष्कार

- यह पीठासीन न्यायालय के अधिकारी या प्रशासनिक अधिकारी के हितों के टकराव के कारण कानूनी कार्यवाही जैसी आधिकारिक कार्रवाई में भाग लेने से अनुपस्थित रहने से संबंधित है।
- जब हितों का टकराव होता है तो एक न्यायाधीश मामले की सुनवाई से पीछे हट सकता है ताकि यह धारणा पैदा न हो कि उसने मामले का निर्णय करते समय पक्षपात किया है।
- पुनर्मूल्यांकन को नियंत्रित करने वाले कोई औपचारिक नियम नहीं हैं, हालाँकि सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों में इस मुद्दे पर बात की गई है।
  - रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ (1987) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यह दूसरे पक्ष के मन में पक्षपात की संभावना की आशंका के प्रति तर्कों को बल प्रदान करती है।
  - न्यायालय को अपने सामने मोजूद पक्ष के तर्क को देखना चाहिये और तय करना चाहिये कि वह पक्षपाती है या नहीं।

प्रमुख बिंदु

- परिचय:
  - वर्ष 2021 में आंध्र प्रदेश ने आरोप लगाया कि तेलंगाना सरकार द्वारा उसे "असंवैधानिक और अवैध" तरीके से पीने एवं सिंचाई के लिये पानी के अपने वैध हिस्से से वंचित कर दिया गया।
  - श्रीशैलम जलाशय का पानी, जो कि दोनों राज्यों के बीच नदी के जल का मुख्य भंडारण है, संघर्ष का एक प्रमुख बिंदु बन गया है।
    - आंध्र प्रदेश ने तेलंगाना द्वारा बिजली उत्पादन हेतु श्रीशैलम जलाशय के पानी के उपयोग का विरोध किया।
    - श्रीशैलम जलाशय आंध्र प्रदेश में कृष्णा नदी पर बनाया गया है। यह नल्लामाला पहाड़ियों में स्थित है।
  - इसने आगे तर्क दिया कि तेलंगाना, आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 के तहत गठित शीर्ष परिषद में लिये गए निर्णयों, इस अधिनियम के तहत गठित कृष्णा नदी प्रबंधन बोर्ड (केआरएमबी) के निर्देशों और केंद्र के निर्देशों का पालन करने से इनकार कर रहा है।
- पृष्ठभूमि:
  - कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण:
    - वर्ष 1969 में 'अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956' के तहत 'कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण' (KWDT) को स्थापित किया गया था और इसने वर्ष 1973 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।
    - साथ ही यह भी निर्धारित किया गया था कि 'कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण' आदेश की समीक्षा या संशोधन किसी सक्षम प्राधिकारी या न्यायाधिकरण द्वारा 31 मई, 2000 के बाद किसी भी समय किया जा सकता है।
  - दूसरा कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण
    - वर्ष 2004 में दूसरे कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण की स्थापना की गई जिसने वर्ष 2010 में अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। वर्ष 2010 में दिये गए निर्णय में अधिशेष जल का 81 TMC महाराष्ट्र को, 177 TMC कर्नाटक को तथा 190 TMC आंध्र प्रदेश के लिये आवंटित किया गया था।
  - KWDT की वर्ष 2010 की रिपोर्ट के बाद:
    - आंध्र प्रदेश ने वर्ष 2011 में सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से इसे चुनौती दी थी।
    - वर्ष 2013 में कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण ने 'आगे की रिपोर्ट' जारी की, जिसे वर्ष 2014 में आंध्र प्रदेश ने फिर से सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी।
  - तेलंगाना का निर्माण:
    - तेलंगाना के निर्माण के बाद आंध्र प्रदेश ने कहा है कि तेलंगाना को KWDT में एक अलग पक्ष के रूप में शामिल किया जाए और कृष्णा जल के आवंटन को तीन के बजाय चार राज्यों के बीच फिर से वितरित किया जाए।
    - यह आंध्र प्रदेश राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 2014 की धारा 89 पर आधारित है।
    - इस खंड के प्रयोजनों हेतु, यह स्पष्ट किया जाता है कि नियत दिन को या उससे पहले ट्रिब्यूनल द्वारा पहले से किये गए परियोजना-विशिष्ट आवंटन संबंधित राज्यों पर बाध्यकारी होंगे।
- संवैधानिक प्रावधान:
  - अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद के निपटारे हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 262 में प्रावधान है।
    - इसके तहत संसद किसी भी अंतर्राज्यीय नदी और नदी घाटी के जल उपयोग, वितरण एवं नियंत्रण के संबंध में किसी भी विवाद या शिकायत के न्यायनिर्णयन का प्रावधान कर सकती है।

- संसद ने दो कानून, नदी बोर्ड अधिनियम (1956) और अंतर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम (1956) अधिनियमित किये हैं।
  - नदी बोर्ड अधिनियम (River Boards Act) अंतर-राज्यीय नदी और नदी घाटियों के नियमन एवं विकास हेतु केंद्र सरकार द्वारा नदी बोर्डों की स्थापना का प्रावधान करता है।
  - अंतर-राज्यीय जल विवाद अधिनियम (Inter-State Water Disputes Act) केंद्र सरकार को एक अंतर-राज्यीय नदी या नदी घाटी के जल के संबंध में दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य विवाद के निर्णय हेतु एक तदर्थ न्यायाधिकरण स्थापित करने का अधिकार प्रदान करता है।
  - किसी भी जल विवाद के संबंध में न तो सर्वोच्च न्यायालय और न ही किसी अन्य न्यायालय के पास अधिकार क्षेत्र है, जिसे इस अधिनियम के तहत ऐसे न्यायाधिकरण को संदर्भित किया जा सकता है।

कृष्णा नदी:

- स्रोत: इसका उद्गम महाराष्ट्र में महाबलेश्वर (सतारा) के निकट होता है। यह गोदावरी नदी के बाद प्रायद्वीपीय भारत की दूसरी सबसे बड़ी नदी है।
- ड्रेनेज: यह बंगाल की खाड़ी में गिरने से पहले चार राज्यों महाराष्ट्र (303 किमी), उत्तरी कर्नाटक (480 किमी) और शेष 1300 किमी तेलंगाना और आंध्र प्रदेश में प्रवाहित होती है।
- सहायक नदियाँ: तुंगभद्रा, मल्लप्रभा, कोयना, भीमा, घटप्रभा, येरला, वर्ना, डिंडी, मुसी और दूधगंगा।

पुद्दुचेरी द्वारा राज्य के दर्जे की मांग

चर्चा में क्यों?

हाल ही में पुद्दुचेरी के मुख्यमंत्री ने पुद्दुचेरी केंद्रशासित प्रदेश (UT) को राज्य का दर्जा देने की मांग की है।

- पुद्दुचेरी के लिये राज्य की मांग एक लंबे समय से लंबित मुद्दा है, जिससे यह पुद्दुचेरी में और अधिक उद्योगों को आमंत्रित कर तथा पर्यटन के लिये बुनियादी सुविधाओं का निर्माण कर रोज़गार क्षमता पैदा करने के लिये किसी भी शक्ति का प्रयोग करने में असमर्थ है।

केंद्रशासित प्रदेश

- UT उन संघीय क्षेत्रों को संदर्भित करता है जो स्वतंत्र होने के लिये बहुत छोटे हैं या आसपास के राज्यों के साथ विलय करने हेतु बहुत अलग (आर्थिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक रूप से) हैं या आर्थिक रूप से कमज़ोर हैं या राजनीतिक रूप से अस्थिर हैं।
  - इन कारणों से वे अलग-अलग प्रशासनिक इकाइयों के रूप में नहीं रह सके और उन्हें केंद्र सरकार द्वारा प्रशासित करने की आवश्यकता थी।
- केंद्रशासित प्रदेशों का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। संघशासित प्रदेशों में लेफ्टिनेंट गवर्नरों को भारत के राष्ट्रपति द्वारा उनके प्रशासकों के रूप में नियुक्त किया जाता है।
  - हालाँकि पुद्दुचेरी, जम्मू और कश्मीर और दिल्ली इस संबंध में अपवाद हैं तथा आंशिक राज्य की स्थिति के कारण एक निर्वाचित विधायिका और सरकार है।
- वर्तमान में भारत में 8 केंद्रशासित प्रदेश हैं- दिल्ली, अंडमान और निकोबार, चंडीगढ़, दादरा और नगर हवेली तथा दमन एवं दीव, जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, लक्षद्वीप व पुद्दुचेरी।

प्रमुख बिंदु

- पृष्ठभूमि:
  - वर्ष 1949 में जब भारत के संविधान को अपनाया गया था, तब भारतीय संघीय ढाँचे में शामिल थे:
    - भाग A राज्यों में ब्रिटिश भारत के नौ तत्कालीन गवर्नर प्रांत शामिल थे।
    - भाग B राज्यों में विधायिकाओं के साथ नौ पूर्ववर्ती रियासतें शामिल थीं।
    - भाग C राज्यों में तत्कालीन मुख्य आयुक्त के अंतर्गत ब्रिटिश भारत प्रांत और कुछ पूर्ववर्ती रियासतें शामिल थीं।
    - भाग D राज्य में केवल अंडमान और निकोबार द्वीप समूह शामिल थे।
  - वर्ष 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम के बाद, भाग सी और भाग डी राज्यों को 'केंद्रशासित प्रदेश' की एक श्रेणी में मिला दिया गया। संघ शासित प्रदेश की अवधारणा को संविधान के सातवें संशोधन अधिनियम, 1956 द्वारा जोड़ा गया था।
- मांग का कारण:
  - भाषायी और सांस्कृतिक कारण देश में नए राज्यों के निर्माण का प्राथमिक आधार हैं।
  - अन्य कारक हैं:
  - स्थानीय संसाधनों के लिये प्रतियोगिता।
  - कुछ क्षेत्रों के प्रति सरकार की लापरवाही।
  - संसाधनों का अनुचित आवंटन।
  - संस्कृति, भाषा, धर्म आदि में अंतर।
  - रोज़गार के पर्याप्त अवसर पैदा करने में अर्थव्यवस्था की विफलता
  - लोकप्रिय लामबंदी और लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया भी इसका एक कारण है।
  - 'मिट्टी के पुत्र' जैसी भावनाएँ।

- नए राज्यों के निर्माण से उत्पन्न मुद्दे:
  - अलग-अलग राज्य का दर्ज़ा उनकी सत्ता संरचनाओं पर प्रमुख समुदाय/जाति/जनजाति के आधिपत्य को जन्म दे सकता है।
  - इससे उप-क्षेत्रों के बीच अंतर-क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्विता का उदय हो सकता है।
  - नए राज्यों के निर्माण के कुछ नकारात्मक राजनीतिक परिणाम भी हो सकते हैं जैसे विधायकों का एक छोटा समूह अपनी इच्छा से सरकार बना या बिगाड़ सकता है।
  - अंतर्राज्यीय जल, बिजली और सीमा विवाद बढ़ने की भी संभावना है।
  - राज्यों के विभाजन के लिये नई राजधानियों के निर्माण और बड़ी संख्या में प्रशासकों को बनाए रखने के लिये भारी धन की आवश्यकता होगी जैसा कि आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के विभाजन में हुआ था।
  - छोटे राज्यों का निर्माण केवल पहले से मौजूद संस्थानों जैसे- ग्राम पंचायत, ज़िला कलेक्टर आदि को सशक्त किये बिना पुराने राज्य की राजधानी से नई राज्य की राजधानी में सत्ता हस्तांतरित तथा राज्यों के पिछड़े क्षेत्रों में विकास का प्रसार करता है।
- संवैधानिक प्रावधान:
  - भारतीय संविधान केंद्र सरकार को मौजूदा राज्यों से नए राज्य बनाने या एक राज्य को दूसरे में विलय करने का अधिकार देता है तथा इस प्रक्रिया को राज्यों का पुनर्गठन कहा जाता है।
  - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 2 के अनुसार संसद कानून द्वारा ऐसे नियमों और शर्तों पर संघ में प्रवेश या नए राज्यों की स्थापना कर सकती है।
  - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार, केंद्र सरकार के पास नए राज्य को निर्मित करने, किसी भी राज्य के आकार को बढ़ाने या घटाने और किसी भी राज्य की सीमाओं या नाम को परिवर्तित करने की शक्ति है।

पुद्दुचेरी

- पुद्दुचेरी शहर दक्षिण-पूर्वी भारत में स्थित पुद्दुचेरी केंद्रशासित प्रदेश की राजधानी है।
- इस UT का गठन वर्ष 1962 में फ्रांस के भारत में चार पूर्व उपनिवेशों में से एक के रूप में किया गया था
  - पांडिचेरी (अब पुद्दुचेरी) और कराईकल भारत के दक्षिणपूर्वी कोरोमंडल तट के साथ यनम, पूर्वी तट के साथ उत्तर में, और माहे, केरल राज्य से घिरे पश्चिमी मालाबार तट पर स्थित है।
- वर्ष 1674 में इसकी उत्पत्ति एक फ्राँसीसी व्यापार केंद्र के रूप में हुई थी, जब इसे एक स्थानीय शासक से खरीदा गया था।
- पांडिचेरी उपनिवेश 17वीं शताब्दी के अंत तक फ्राँसीसी और डच के बीच लगातार लड़ाई का केंद्र बना रहा और इस पर कई बार ब्रिटिश सैनिकों द्वारा कब्जा किया गया। हालाँकि यह वर्ष 1962 तक भारत में स्थानांतरित होने तक फ्राँसीसी औपनिवेशिक अधिकार में बना रहा।

बेलागवी सीमा विवाद

चर्चा में क्यों?

कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्यों के मध्य बेलागवी को लेकर दशकों पुराना विवाद तथा महाराष्ट्र जिसे बेलगाम ज़िला कहता है फिर से सुर्खियों में बना हुआ है।

- बेलगाम या बेलागवी वर्तमान में कर्नाटक राज्य का हिस्सा है लेकिन महाराष्ट्र द्वारा इस पर अपना दावा किया जाता है।

भारत में राज्यों का पुनर्गठन:

- वर्ष 1947 में स्वतंत्रता के समय भारत में लगभग 550 असंबद्ध रियासतें शामिल थीं।
- वर्ष 1950 में संविधान में भारतीय संघ के राज्यों का चार गुना वर्गीकरण था- भाग A, भाग B, भाग C और भाग D राज्य।
  - भाग A राज्यों में ब्रिटिश भारत के नौ तत्कालीन गवर्नर प्रांत शामिल थे।
  - भाग B राज्यों में विधायिकाओं के साथ नौ पूर्ववर्ती रियासतें शामिल थीं।
  - भाग C राज्यों में तत्कालीन मुख्य आयुक्त के अंतर्गत ब्रिटिश भारत प्रांत और कुछ पूर्ववर्ती रियासतें शामिल थीं।
  - भाग D राज्य में केवल अंडमान और निकोबार द्वीप समूह शामिल थे।
- उस समय राज्यों का समूहीकरण भाषायी या सांस्कृतिक विभाजन के बजाय राजनीतिक और ऐतिहासिक विचारों के आधार पर किया जाता था, लेकिन यह एक अस्थायी व्यवस्था थी।
- बहुभाषी प्रकृति और विभिन्न राज्यों के बीच मौजूद मतभेदों के कारण राज्यों को स्थायी आधार पर पुनर्गठित करने की आवश्यकता थी।
- इस संदर्भ में भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की आवश्यकता पर गौर करने के लिये सरकार द्वारा 1948 में एस.के. धर समिति का गठन किया गया था।
  - आयोग द्वारा भाषायी आधार पर नहीं बल्कि ऐतिहासिक और भौगोलिक आधार को शामिल करते हुए प्रशासनिक सुविधा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन को प्राथमिकता दी गई।

- इससे बहुत आक्रोश पैदा हुआ और एक अन्य भाषायी प्रांत समिति की नियुक्ति की गई।

- दिसंबर 1948 में इस मुद्दे का अध्ययन करने के लिये जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और पट्टाभि सीतारमैया की जेवीपी समिति का गठन किया गया था।
  - समिति ने अप्रैल 1949 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के विचार को खारिज़ करते हुए कहा कि जनता की मांग के आलोक में इस मुद्दे को नए सिरे से देखा जा सकता है।
- हालाँकि अक्तूबर 1953 में विरोध के कारण भारत सरकार ने तेलुगू भाषायी क्षेत्रों को मद्रास राज्य से अलग करके पहला भाषायी राज्य बनाया जिसे आंध्र राज्य के रूप में जाना जाता है।
- 22 दिसंबर, 1953 को जवाहरलाल नेहरू ने राज्यों के पुनर्गठन पर विचार करने के लिये फज़ल अली के नेतृत्व में एक आयोग का गठन किया।
  - आयोग ने 1955 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा सुझाव दिया कि पूरे देश को 16 राज्यों और तीन केंद्र प्रशासित क्षेत्रों में विभाजित किया जाना चाहिये।
- सरकार ने सिफारिशों से पूरी तरह सहमत न होते हुए नवंबर 1956 में पारित राज्य पुनर्गठन अधिनियम के तहत देश को 14 राज्यों और 6 केंद्रशासित प्रदेशों में विभाजित कर दिया।
- वर्ष 1956 में राज्यों के बड़े पैमाने पर पुनर्गठन के बाद भी लोकप्रिय आंदोलनों और राजनीतिक परिस्थितियों के दबाव के कारण भारत के राजनीतिक मानचित्र में निरंतर परिवर्तन होते रहे।
- 5 अगस्त, 2019 को भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 370 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संविधान (जम्मू और कश्मीर के लिये आवेदन) आदेश, 2019 जारी किया था।
  - इसके द्वारा जम्मू और कश्मीर राज्य को दो नए केंद्रशासित प्रदेशों (UTs)- जम्मू और कश्मीर तथा लद्दाख में विभाजित कर दिया गया।
- हाल ही में दादरा और नागर हवेली तथा दमन और दीव (केंद्रशासित प्रदेशों का विलय) अधिनियम, 2019 द्वारा केंद्रशासित प्रदेशों (UTs)- दमन और दीव (D&D) तथा दादरा और नागर हवेली (DNH) का विलय कर दिया गया है।
- वर्तमान में भारत में 28 राज्य और 8 केंद्रशासित प्रदेश हैं।

लद्दाख को छठी अनुसूची में शामिल करने की मांग

चर्चा में क्यों?

हाल ही में संसद में भूमि, रोज़गार और स्थानीय आबादी की सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण के लिये केंद्रशासित प्रदेश लद्दाख को संविधान की छठी अनुसूची में शामिल करने की मांग उठाई गई है।

- जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 द्वारा राज्य को दो अलग-अलग केंद्रशासित प्रदेशों जम्मू और कश्मीर (विधायिका के साथ) तथा लद्दाख (विधायिका के बिना) में विभाजित किया गया था।

छठी अनुसूची

- अनुच्छेद 244: अनुच्छेद 244 के तहत छठी अनुसूची, स्वायत्त प्रशासनिक प्रभागों- स्वायत्त ज़िला परिषद (ADCs) - के गठन का प्रावधान करती है, जिनके पास राज्य के भीतर विधायी, न्यायिक और प्रशासनिक स्वायत्तता होती है।
  - छठी अनुसूची में चार उत्तर-पूर्वी राज्यों असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन हेतु विशेष प्रावधान शामिल हैं।
- स्वायत्त ज़िले: इन चार राज्यों में आदिवासी क्षेत्रों को स्वायत्त ज़िलों के रूप में गठित किया गया है। राज्यपाल को स्वायत्त ज़िलों को व्यवस्थित और पुनर्गठित करने का अधिकार है।
  - संसद या राज्य विधायिका के अधिनियम स्वायत्त ज़िलों पर लागू नहीं होते हैं या निर्दिष्ट संशोधनों और अपवादों के साथ लागू होते हैं।
  - इस संबंध में निर्देशन की शक्ति या तो राष्ट्रपति या राज्यपाल के पास होती है।
- ज़िला परिषद: प्रत्येक स्वायत्त ज़िले में एक ज़िला परिषद होती है, जिसमें 30 सदस्य होते हैं, जिनमें से चार राज्यपाल द्वारा मनोनीत होते हैं और शेष 26 वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जाते हैं।
  - निर्वाचित सदस्य पाँच साल के कार्यकाल के लिये पद धारण करते हैं (यदि परिषद को इससे पूर्व भंग नहीं किया जाता है) और मनोनीत सदस्य राज्यपाल के इच्छानुसार समय तक पद पर बने रहते हैं।
  - प्रत्येक स्वायत्त क्षेत्र में भी एक अलग क्षेत्रीय परिषद होती है।
- परिषद की शक्तियाँ: ज़िला और क्षेत्रीय परिषदें अपने अधिकार क्षेत्र के तहत क्षेत्रों का प्रशासन करती हैं।
  - भूमि, वन, नहर के जल, स्थानांतरित कृषि, ग्राम प्रशासन, संपत्ति का उत्तराधिकार, विवाह एवं तलाक, सामाजिक रीति-रिवाजों जैसे कुछ निर्दिष्ट मामलों पर कानून बना सकती हैं, लेकिन ऐसे सभी कानूनों के लिये राज्यपाल की सहमति आवश्यक है।

- वे जनजातियों के मध्य मुकदमों एवं मामलों की सुनवाई के लिये ग्राम परिषदों या न्यायालयों का गठन कर सकती हैं। वे उनकी अपील सुनते हैं। इन मुकदमों और मामलों के संबंध में उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र राज्यपाल द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है।
- ज़िला परिषद ज़िले में प्राथमिक स्कूलों, औषधालयों, बाज़ारों, मत्स्यपालन क्षेत्रों, सड़कों आदि की स्थापना, निर्माण या प्रबंधन कर सकती है।
- ज़िला एवं क्षेत्रीय परिषदों के पास भू राजस्व का आकलन एवं संग्रहण करने एवं कुछ निर्दिष्ट कर लगाने का अधिकार है।

'विशेष श्रेणी राज्य' का दर्जा

चर्चा में क्यों?

हाल ही में बिहार सरकार ने ज़ोर देकर कहा है कि उसने बिहार को विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा (Special Category Status) देने की मांग को वापस नहीं लिया है।

प्रमुख बिंदु

- विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा:
  - विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा उन राज्यों के विकास में सहायता के लिये केंद्र द्वारा दिया गया वर्गीकरण है, जो भौगोलिक और सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन का सामना कर रहे हैं।
  - यह वर्गीकरण वर्ष 1969 में पाँचवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर किया गया था।
  - यह गाडगिल फॉर्मूले पर आधारित था जिसमें विशेष श्रेणी के राज्य के दर्जे के लिये निम्नलिखित पैरामीटर निर्धारित किये गए थे:
    - पहाड़ी क्षेत्र।
    - कम जनसंख्या घनत्व और/या जनजातीय जनसंख्या का बड़ा हिस्सा।
    - पड़ोसी देशों के साथ सीमाओं की सामरिक स्थिति।
    - आर्थिक और बुनियादी अवसंरचना का पिछड़ापन।
    - राज्य वित्त की अव्यवहार्य प्रकृति।
  - विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा पहली बार वर्ष 1969 में जम्मू-कश्मीर, असम और नगालैंड को दिया गया था। तब से लेकर अब तक आठ अन्य राज्यों (अरुणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, सिक्किम, त्रिपुरा और उत्तराखंड) को यह दर्जा दिया गया है।
  - संविधान में किसी राज्य को विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा (SCS) देने का कोई प्रावधान नहीं है।
  - राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा पूर्व में योजना सहायता के लिये विशेष श्रेणी का दर्जा उन राज्यों को प्रदान किया गया था, जिन्हें विशेष रूप से ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।
    - अब ऐसे राज्यों को केंद्र द्वारा विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा दिया जाता है।
  - 14वें वित्त आयोग ने पूर्वोत्तर और तीन पहाड़ी राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों के लिये 'विशेष श्रेणी का दर्जा' समाप्त कर दिया है।
    - इसके बजाय, इसने सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य के संसाधन अंतर को 'कर हस्तांतरण' के माध्यम से भरा जाए, केंद्र से कर राजस्व में राज्यों की हिस्सेदारी को 32% से बढ़ाकर 42% करने का आग्रह किया, जिसे वर्ष 2015 से लागू किया गया है।
- SCS वाले राज्यों को लाभ:
  - केंद्र सरकार द्वारा विशेष श्रेणी के राज्यों के लिये केंद्र प्रायोजित योजना में आवश्यक धनराशि के 90% हिस्से का भुगतान किया जाता है, जबकि अन्य राज्यों के मामले में केंद्र सरकार केवल 60% या 75% ही भुगतान करती है।
  - खर्च न किया गया धन व्यपगत नहीं होता और उसे भविष्य में उपयोग किया जा सकता है।
  - इन राज्यों को उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क, आयकर और कॉर्पोरेट कर में महत्त्वपूर्ण रियायतें प्रदान की जाती हैं।

ई-आईएलपी प्लेटफॉर्म : मणिपुर

हाल ही में मणिपुर के मुख्यमंत्री ने राज्य में इनर लाइन परमिट (ILP) प्रणाली के प्रभावी नियमन हेतु ई-आईएलपी (e-ILP) प्लेटफॉर्म को वर्चुअली लॉन्च किया।

- ILP प्रणाली 1 जनवरी, 2020 को मणिपुर में लागू हुई।
- मणिपुर में चार तरह के परमिट जारी किये जाते हैं- अस्थायी, नियमित, विशेष और श्रमिक या लेबर परमिट।

प्रमुख बिंदु

- ILP प्रणाली की पृष्ठभूमि :
  - 'बंगाल ईस्टर्न फ्रंटियर रेगुलेशन एक्ट, 1873' के तहत अंग्रेज़ों ने निर्दिष्ट क्षेत्रों में बाहरी लोगों के प्रवेश और ठहरने को नियंत्रित करने वाले नियमों को तैयार किया।
  - यह 'ब्रिटिश विषयों' (भारतीयों) को अपने क्षेत्रों में व्यापार करने से रोककर क्राउन के वाणिज्यिक हितों की रक्षा के लिये लागू किया गया था।
  - 1950 में भारत सरकार ने 'ब्रिटिश विषयों' को 'सिटीज़न ऑफ इंडिया' या भारत के नागरिक से प्रतिस्थापित कर दिया।

- यह अन्य भारतीय राज्यों से संबंधित बाहरी लोगों से स्वदेशी लोगों के हितों की रक्षा के बारे में स्थानीय चिंताओं को दूर करने के लिये था।

- परिचय :
  - इनर लाइन परमिट (ILP) एक आधिकारिक यात्रा दस्तावेज़ है, जिसे अरुणाचल प्रदेश, मिज़ोरम, नगालैंड और मणिपुर जैसे राज्यों में प्रवेश करने के लिये अन्य राज्यों के भारतीय नागरिकों के पास ILP होना आवश्यक है।
  - यह पूर्णत: यात्रा के प्रयोजन से संबंधित राज्य सरकार द्वारा जारी किया जाता है।
  - ऐसे राज्यों को नागरिकता संशोधन अधिनियम (CAA) के प्रावधानों से छूट दी गई है।
    - CAA, भारतीय नागरिकता प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले तीन देशों के प्रवासियों की कुछ श्रेणियों के लिये पात्रता मानदंड में छूट प्रदान करता है। यह इनर लाइन सिस्टम द्वारा संरक्षित क्षेत्रों सहित कुछ श्रेणियों को छूट देता है।
- विदेशी लोगों के लिये नियम:
  - विदेशियों को पर्यटन स्थलों का दौरा करने के लिये 'संरक्षित क्षेत्र परमिट' (PAP) की आवश्यकता होती है, जो घरेलू पर्यटकों के लिये आवश्यक ILPs से भिन्न होता है।
    - विदेशी (संरक्षित क्षेत्र) आदेश 1958 के तहत उक्त आदेश में परिभाषित 'इनर लाइन' के तहत आने वाले क्षेत्रों और विभिन्न राज्यों के अंतर्राष्ट्रीय सीमा से लगे सभी क्षेत्रों को संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है।
    - एक विदेशी नागरिक को आमतौर पर किसी संरक्षित/प्रतिबंधित क्षेत्र में जाने की अनुमति नहीं दी जाती है जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि इस तरह की यात्रा को उचित ठहराने के लिये उस व्यक्ति के पास विशिष्ट कारण है।

विधान परिषद

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में पश्चिम बंगाल की सरकार ने राज्य में विधान परिषद (Legislative Council) की स्थापना का निर्णय लिया है

- परिषद की स्थापना के लिये एक विधेयक को विधानसभा में प्रस्तुत करना होता है और उसके बाद राज्यपाल की मंज़ूरी की आवश्यकता होती है। वर्ष 1969 में पश्चिम बंगाल में विधान परिषद को समाप्त कर दिया गया था।

प्रमुख बिंदु:

गठन का आधार:

- भारत में विधायिका की द्विसदनीय प्रणाली है।
- जिस प्रकार संसद के दो सदन होते हैं, उसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 169 के अनुसार राज्यों में विधानसभा के अतिरिक्त एक विधान परिषद भी हो सकती है।

विधान परिषद वाले छह राज्य: आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक।

- वर्ष 2020 में आंध्र प्रदेश विधानसभा ने विधान परिषद को समाप्त करने का प्रस्ताव पारित किया। अंतत: परिषद को समाप्त करने के लिये भारत की संसद द्वारा इस प्रस्ताव को मंज़ूरी दी जानी बाकी है।
- वर्ष 2019 में जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन विधेयक, 2019 के माध्यम से जम्मू और कश्मीर विधान परिषद को समाप्त कर दिया गया।

अनुच्छेद 169 (गठन और उन्मूलन):

- संसद एक विधान परिषद को (जहाँ यह पहले से मौजूद है) का विघटन कर सकती है और (जहाँ यह पहले से मौजूद नहीं है) इसका गठन कर सकती है। यदि संबंधित राज्य की विधानसभा इस संबंध में संकल्प पारित करे। इस तरह के किसी प्रस्ताव का राज्य विधानसभा द्वारा पूर्ण बहुमत से पारित होना आवश्यक होता है।
- विशेष बहुमत का तात्पर्य:
  - विधानसभा की कुल सदस्यता का बहुमत और
  - विधानसभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों का बहुमत।

संरचना:

- संविधान के अनुच्छेद 171 के तहत, किसी राज्य की विधान परिषद में राज्य विधानसभा की कुल संख्या के एक तिहाई से अधिक और 40 से कम सदस्य नहीं होंगे।
- राज्य सभा के समान विधान परिषद एक सतत् सदन है, अर्थात् यह एक स्थायी निकाय है जिसका विघटन नहीं होता। विधान परिषद के एक सदस्य (Member of Legislative Council-MLC) का कार्यकाल छह वर्ष का होता है, जिसमें एक तिहाई सदस्य हर दो वर्ष में सेवानिवृत्त होते हैं।

निर्वाचन पद्धति:

- एक तिहाई MLC राज्य के विधायकों द्वारा चुने जाते हैं,
- इसके अलावा 1/3 सदस्य स्थानीय निकायों जैसे- नगरपालिका और ज़िला बोर्डों आदि द्वारा चुने जाते हैं,
- 1/12 सदस्यों का निर्वाचन 3 वर्ष से अध्यापन कर रहे लोग चुनते हैं तथा 1/12 सदस्यों को राज्य में रह रहे 3 वर्ष से स्नातक निर्वाचित करते हैं।

- शेष सदस्यों का नामांकन राज्यपाल द्वारा उन लोगों के बीच से किया जाता है जिन्हें साहित्य, ज्ञान, कला, सहकारिता आंदोलन और समाज सेवा का विशेष ज्ञान तथा व्यावहारिक अनुभव हो।

राज्य सभा की तुलना में विधान परिषद:

- परिषदों की विधायी शक्ति सीमित है। राज्यसभा के विपरीत, जिसके पास गैर-वित्तीय विधान को आकार देने की पर्याप्त शक्तियाँ हैं, विधान परिषदों के पास ऐसा करने के लिये संवैधानिक जनादेश नहीं है।
- विधानसभाएँ, परिषद द्वारा कानून में किये गए सुझावों/संशोधनों को रद्द कर सकती हैं।
- इसके अलावा राज्यसभा सांसदों के विपरीत, MLCs, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव में मतदान नहीं कर सकते। उपराष्ट्रपति राज्यसभा का सभापति होता है जबकि परिषद का अध्यक्ष परिषद के किसी एक सदस्य को ही चुना जाता है।

विधान परिषद की भूमिका:

- यह उन व्यक्ति विशेष की स्थिति को सुनिश्चित कर सकती है जिन्हें चुनाव के माध्यम से नहीं चुना जा सकता है परंतु वे विधायी प्रक्रिया (जैसे कलाकार, वैज्ञानिक, आदि) में योगदान करने में सक्षम हैं।
- यह विधानसभा द्वारा जल्दबाजी में लिये गए फैसलों पर नज़र रख सकती है।

विधान परिषद के खिलाफ तर्क:

- यह विधि निर्माण की प्रक्रिया में देरी कर सकता है, साथ ही इसे राज्य के बजट पर बोझ माना जाता है।
- इसका उपयोग उन नेताओं को संगठित करने के लिये भी किया जा सकता है जो चुनाव नहीं जीत पाए हैं।

दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र शासन (संशोधन) अधिनियम, 2021

चर्चा में क्यों?

हाल ही में राजधानी दिल्ली के उपराज्यपाल की शक्तियों को बढ़ाने संबंधी दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र शासन (संशोधन) अधिनियम [Government of National Capital Territory of Delhi (Amendment) Act], 2021 लागू कर दिया गया है।

प्रमुख बिंदु

दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र शासन (संशोधन) अधिनियम, 2021 के प्रमुख प्रावधान:

- यह अधिनियम वर्ष 1991 के अधिनियम की धारा 21, 24, 33 और 44 में संशोधन करता है।
- इसके तहत दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में 'सरकार' का आशय उप-राज्यपाल से होगा।
- यह अधिनियम उन मामलों में भी उपराज्यपाल को विवेकाधीन अधिकार देता है जिन मामलों में दिल्ली की विधानसभा को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है।
- यह विधेयक सुनिश्चित करता है कि मंत्रिपरिषद (अथवा दिल्ली मंत्रिमंडल) द्वारा लिये गए किसी भी निर्णय को लागू करने से पूर्व उपराज्यपाल को अपनी 'राय देने हेतु उपयुक्त अवसर प्रदान किया जाए।
- यह विधानसभा या उसकी समितियों को दैनिक प्रशासन से संबंधित मामलों को उठाने या प्रशासनिक निर्णयों के संबंध में पूछताछ करने के लिये नियम बनाने से रोकता है।

आलोचना:

- इस नए संशोधन से दिल्ली सरकार की कार्यक्षमता प्रभावित होगी, क्योंकि अब किसी तत्काल कार्रवाई के समय भी उपराज्यपाल से परामर्श लेना अनिवार्य होगा।
- गौरतलब है कि उपराज्यपाल राज्य सरकार को एक निश्चित समय सीमा के भीतर अपनी राय देने के लिये बाध्य नहीं है। आलोचकों का तर्क है कि उपराज्यपाल सरकार के प्रशासनिक कार्यों में बाधा डालने हेतु इन शक्तियों का राजनीतिक रूप से दुरुपयोग कर सकता है।
- यह संघवाद (Federalism) की भावना के विरुद्ध है।

केंद्र सरकार का पक्ष:

- यह संशोधन सर्वोच्च न्यायालय के जुलाई 2018 के निर्णय के अनुरूप में है, जिसमें दिल्ली के मुख्यमंत्री और उपराज्यपाल की शक्तियों को स्पष्ट किया गया था।
- इस अधिनियम का उद्देश्य सार्वजनिक जवाबदेही को बढ़ावा देना और रोज़मर्रा के प्रशासन से संबंधित तकनीकी अस्पष्टताओं को दूर करना है।
- इससे दिल्ली की प्रशासनिक दक्षता बढ़ेगी और कार्यपालिका तथा विधायिका के बीच बेहतर संबंध सुनिश्चित हो सकेंगे।

पृष्ठभूमि

दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991

- इसे वर्ष 1991 में विधानसभा और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के मंत्रिपरिषद से संबंधित संविधान के प्रावधानों के पूरक के रूप में लागू किया गया था।
- इस अधिनियम ने दिल्ली में एक निर्वाचित सरकार के गठन की प्रक्रिया को सक्षम किया।

- सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्व में वर्ष 1991 के अधिनियम की सराहना करते हुए कहा था कि संविधान (69वाँ संशोधन) अधिनियम, 1991 का वास्तविक उद्देश्य एक लोकतांत्रिक और प्रतिनिधि सरकार का गठन सुनिश्चित करना है, जिसमें आम लोगों को प्रदेश से संबंधित कानूनों पर अपनी राय देने का अधिकार हो, हालाँकि यह संपूर्ण प्रक्रिया संविधान में निर्धारित नियमों के अधिक होगी।

69वाँ संशोधन अधिनियम, 1992

- इस संशोधन के द्वारा संविधान में दो नए अनुच्छेद 239AA और 239AB जोड़े गए, जिसके अंतर्गत केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली को विशेष दर्जा दिया गया।
- अनुच्छेद 239AA के अंतर्गत केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली को 'राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली' बनाया गया और इसके प्रशासक को उपराज्यपाल (Lt. Governor) नाम दिया गया।
  - दिल्ली के लिये विधानसभा की व्यवस्था की गई जो पुलिस, भूमि और लोक व्यवस्था के अतिरिक्त राज्य सूची और समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बना सकती है।
  - यह दिल्ली के लिये एक मंत्रिपरिषद का भी प्रावधान करता है, जिसमें मंत्रियों की कुल संख्या विधानसभा के कुल सदस्यों की संख्या के 10% से अधिक नहीं होगी।
- अनुच्छेद 239AB के मुताबिक, राष्ट्रपति अनुच्छेद 239AA के किसी भी प्रावधान या इसके अनुसरण में बनाए गए किसी भी कानून के किसी भी प्रावधान के संचालन को निलंबित कर सकता है। यह प्रावधान अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) जैसा है।

टकराव के प्रमुख बिंदु:

- राजधानी दिल्ली में सत्ता के बंटवारे को लेकर कई वर्षों से मुख्यमंत्री और उपराज्यपाल के बीच तनातनी बनी हुई थी।
- इन टकराओं का केंद्र बिंदु यह था कि किसी भी मामले पर उपराज्यपाल और मंत्रिपरिषद के बीच मतभेद होने पर,
  - उपराज्यपाल द्वारा संबंधित मामले को राष्ट्रपति के पास भेजा जाता था,
  - और लंबित मामले की स्थिति में उपराज्यपाल को अपने विवेक के मुताबिक, उस मामले पर कार्रवाई करने का अधिकार था।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:

- दिल्ली सरकार बनाम भारत संघ और अन्य (2018) वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि:
  - सरकार अपने निर्णयों पर उपराज्यपाल की सहमति लेने के लिये बाध्य नहीं है।
  - दोनों पक्षों के बीच किसी भी मतभेद को प्रतिनिधि सरकार और सहकारी संघवाद की संवैधानिक प्रधानता को ध्यान में रखते हुए हल किया जाना चाहिये।
- इस निर्णय ने उपराज्यपाल के लिये राष्ट्रपति के पास किसी मामलों को भेजना बेहद कठिन बना दिया था।

राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस

चर्चा में क्यों?

हाल ही में भारत ने 24 अप्रैल 2021 को 12वाँ राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस (National Panchayati Raj Day) के रूप में मनाया गया।

- इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने स्वामित्व (SWAMITVA) योजना के अंतर्गत ई-संपत्ति कार्ड वितरण का शुभारंभ किया।

प्रमुख बिंदु

राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस के विषय में:

- पृष्ठभूमि: पहला राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस वर्ष 2010 में मनाया गया था। तब से भारत में प्रत्येक वर्ष 24 अप्रैल को राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस मनाया जाता है।
- इस दिवस पर दिये जाने वाले पुरस्कार:
  - इस अवसर पर पंचायती राज मंत्रालय देश भर में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाली पंचायतों/राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों को पुरस्कृत करता है।
  - यह पुरस्कार विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत दिये जाते हैं,
    - दीन दयाल उपाध्याय पंचायत शक्तीकरण पुरस्कार।
    - नानाजी देशमुख राष्ट्रीय गौरव ग्राम सभा पुरस्कार।
    - बाल सुलभ ग्राम पंचायत पुरस्कार।
    - ग्राम पंचायत विकास योजना पुरस्कार।
    - ई-पंचायत पुरस्कार (केवल राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को दिया गया)।
  - ऐसा पहली बार हुआ है कि आयोजन के समय ही पुरस्कृत राशि पंचायतों के खाते में सीधे भेजी गई हो।

पंचायती राज:

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में पंचायतों का उल्लेख किया गया है और अनुच्छेद 246 में राज्य विधानमंडल को स्थानीय स्वशासन से संबंधित किसी भी विषय के संबंध में कानून बनाने का अधिकार दिया।
- स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र की स्थापना करने के लिये 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से पंचायती राज संस्थान (Panchayati Raj Institution) को संवैधानिक स्थिति प्रदान की गई और उन्हें देश में ग्रामीण विकास का कार्य सौंपा गया।

- पंचायती राज संस्थान भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन (Rural Local Self-government) की एक प्रणाली है।
  - स्थानीय स्वशासन का अर्थ है स्थानीय लोगों द्वारा निर्वाचित निकायों द्वारा स्थानीय मामलों का प्रबंधन।
- देश भर के पंचायती राज संस्थानों (PRI) में ई-गवर्नेंस को मज़बूत करने के लिये पंचायती राज मंत्रालय (MoPR) ने एक वेब-आधारित पोर्टल ई-ग्राम स्वराज (e-Gram Swaraj) लॉन्च किया है।
  - यह पोर्टल सभी ग्राम पंचायतों को ग्राम पंचायत विकास योजनाओं (Gram Panchayat Development Plans) को तैयार करने एवं क्रियांवयन के लिये एकल इंटरफेस प्रदान करने के साथ-साथ रियल टाइम निगरानी और जवाबदेही सुनिश्चित करेगा।

स्वामित्व योजना के विषय में:

- यह योजना पंचायती राज मंत्रालय, राज्य पंचायती राज विभाग, राज्य राजस्व विभाग और भारतीय सर्वेक्षण विभाग के सहयोग से ड्रोन तकनीकी द्वारा नवीनतम सर्वेक्षण विधियों के उपयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में रिहायशी ज़मीनों के सीमांकन के लिये संपत्ति सत्यापन का समाधान करेगी।
  - यह मैपिंग पूरे देश में चार वर्ष की अवधि में (वर्ष 2020 से वर्ष 2024 तक) पूरी की जाएगी।

73वें संवैधानिक संशोधन की मुख्य विशेषताएँ

- इस संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में भाग-9 जोड़ा गया था।
- लोकतांत्रिक प्रणाली की बुनियादी इकाइयों के रूप में ग्राम सभाओं (ग्राम) को रखा गया जिसमें मतदाता के रूप में पंजीकृत सभी वयस्क सदस्य शामिल होते हैं।
- उन राज्यों को छोड़कर जिनकी जनसंख्या 20 लाख से कम हो ग्राम, मध्यवर्ती (प्रखंड/तालुका/मंडल) और ज़िला स्तरों पर पंचायतों की त्रि-स्तरीय प्रणाली लागू की गई है (अनुच्छेद 243B)।
- सभी स्तरों पर सीटों को प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरा जाना है [अनुच्छेद 243C(2)]।
- सीटों का आरक्षण:
  - अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) के लिये सीटों का आरक्षण किया गया है तथा सभी स्तरों पर पंचायतों के अध्यक्ष के पद भी जनसंख्या में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के अनुपात के आधार पर आरक्षित किये गए हैं।
  - उपलब्ध सीटों की कुल संख्या में से एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिये आरक्षित हैं।
  - सभी स्तरों पर अध्यक्षों के एक तिहाई पद भी महिलाओं के लिये आरक्षित हैं (अनुच्छेद 243D)।
- कार्यकाल:
  - पंचायतों का कार्यकाल पाँच वर्ष निर्धारित है लेकिन कार्यकाल से पहले भी इसे भंग किया जा सकता है।
  - पंचायतों के नए चुनाव कार्यकाल की अवधि की समाप्ति या पंचायत भंग होने की तिथि से 6 महीने के भीतर ही करा लिये जाने चाहिये (अनुच्छेद 243E)।
- मतदाता सूची के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण के लिये प्रत्येक राज्य में स्वतंत्र चुनाव आयोग होंगे (अनुच्छेद 243K)।
- पंचायतों की शक्ति: पंचायतों को ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित विषयों के संबंध में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजना तैयार करने के लिये अधिकृत किया गया है (अनुच्छेद 243G)।
- राजस्व का स्रोत (अनुच्छेद 243H): राज्य विधायिका पंचायतों को अधिकृत कर सकती है-
  - राज्य के राजस्व से बजटीय आवंटन।
  - कुछ करों के राजस्व का हिस्सा।
  - राजस्व का संग्रह और प्रतिधारण।
- प्रत्येक राज्य में एक वित्त आयोग का गठन करना ताकि उन सिद्धांतों का निर्धारण किया जा सके जिनके आधार पर पंचायतों और नगरपालिकाओं के लिये पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाएगी (अनुच्छेद 243I)।
- छूट:
  - यह अधिनियम सामाजिक-सांस्कृतिक और प्रशासनिक कारणों से नगालैंड, मेघालय तथा मिज़ोरम एवं कुछ अन्य क्षेत्रों में लागू नहीं होता है। इन क्षेत्रों में शामिल हैं:
    - आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान राज्यों में पाँचवीं अनुसूची के तहत सूचीबद्ध अनुसूचित क्षेत्र।
    - मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्र जिसके लिये जिला परिषदें मौजूद हैं।
    - पश्चिम बंगाल राज्य में दार्जिलिंग ज़िले के पहाड़ी क्षेत्र जिनके लिये दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल मौजूद है।
  - संसद ने पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996 [The Provisions of the Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act-PESA] के माध्यम से भाग 9 और 5वीं अनुसूची क्षेत्रों के प्रावधानों को बढ़ाया है।

- वर्तमान में 10 राज्य (आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान और तेलंगाना) पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र में शामिल हैं।

संघ कार्यकारिणी और विधायिका

धन्यवाद प्रस्ताव

चर्चा में क्यों?

हाल ही में राष्ट्रपति के अभिभाषण के 'धन्यवाद प्रस्ताव' में संशोधन प्रस्तावित किये गए (हालाँकि वे पारित नहीं हुए)।

- संशोधन प्रस्ताव के तहत सरकार द्वारा पेगासस स्पाइवेयर के कथित उपयोग और कोविड-19 महामारी से निपटने हेतु सरकार के प्रयासों का उल्लेख किया गया था।

धन्यवाद प्रस्ताव:

- अनुच्छेद 87 में राष्ट्रपति के लिये विशेष संबोधन का प्रावधान किया गया है।
- इस अनुच्छेद में प्रावधान है कि लोकसभा के प्रत्येक आम चुनाव के बाद पहले सत्र के प्रारंभ में और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारंभ में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को एक साथ संबोधित करेगा और संसद को सत्र आहूत करने के कारणों के बारे में सूचित करेगा।
- इस तरह के संबोधन को 'विशेष संबोधन' कहा जाता है और यह एक वार्षिक विशेषता भी है।
- इस संबोधन के लिये संसद के दोनों सदनों का एक साथ एकत्र होना आवश्यक है।

राष्ट्रपति का अभिभाषण:

- राष्ट्रपति का अभिभाषण सरकार की नीति का विवरण होता है और प्राय: इस अभिभाषण का प्रारूप सरकार द्वारा ही तैयार किया जाता है।
- यह संबोधन पिछले वर्ष के दौरान सरकार की विभिन्न गतिविधियों और उपलब्धियों की समीक्षा प्रस्तुत करता है तथा उन नीतियों, परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों को निर्धारित किया जाता है जिन्हें सरकार महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों के संबंध में आगे बढ़ाने की इच्छा रखती है।
- यह अभिभाषण व्यापक रूप में उन विधायी कार्यों को भी इंगित करता है, जिन्हें उस विशिष्ट वर्ष में आयोजित होने वाले सत्रों के दौरान लाने का प्रस्ताव किया जाना है।
- राष्ट्रपति का अभिभाषण, जो 'ब्रिटेन राजशाही/राज-सिंहासन के भाषण' (Speech From The Throne in Britain) से मेल खाता है, पर संसद के दोनों सदनों में 'धन्यवाद प्रस्ताव' (Motion of Thanks) पर चर्चा की जाती है।
- यदि किसी भी संशोधन को सदन के समक्ष रखा जाता है तथा स्वीकार किया जाता है तो धन्यवाद प्रस्ताव संशोधित रूप में स्वीकार किया जाता है।
  - संशोधन अभिभाषण में निहित मामलों के साथ-साथ उन मामलों को भी संदर्भित कर सकते हैं जिनका सदस्य की राय में अभिभाषण उल्लेख करने में विफल रहा है।
- चर्चा के अंत में प्रस्ताव को मतदान के लिये रखा जाता है।

धन्यवाद प्रस्ताव का महत्त्व:

- धन्यवाद प्रस्ताव सदन में पारित होना चाहिये, नहीं तो यह सरकार की हार मानी जाएगी। यह उन तरीकों में से एक है जिसके माध्यम से लोकसभा में सरकार अविश्वास में आ सकती है। अन्य तरीके हैं:
  - धन विधेयक की अस्वीकृति।
  - निंदा प्रस्ताव या स्थगन प्रस्ताव पारित करना।
  - एक अहम मुद्दे पर सरकार की हार।
  - कटौती प्रस्ताव पारित करना।

भारतीय संसद में अन्य प्रस्ताव:

विशेषाधिकार प्रस्ताव:

- इसे एक सदस्य द्वारा तब पेश किया जाता है जब उसे लगता है कि किसी मंत्री ने किसी मामले के तथ्यों को रोककर या गलत या विकृत तथ्य देकर सदन या उसके एक या अधिक सदस्यों के विशेषाधिकार का उल्लंघन किया है। इस प्रस्ताव का उद्देश्य संबंधित मंत्री की निंदा करना है।
- इसे राज्यसभा के साथ-साथ लोकसभा में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

निंदा प्रस्ताव:

- लोकसभा में इसे स्वीकार करने का कारण बताना अनिवार्य है। इसे एक मंत्री या मंत्रियों के समूह या पूरी मंत्रिपरिषद के खिलाफ प्रस्तुत किया जा सकता है।
- इसे विशिष्ट नीतियों और कार्यों के लिये मंत्रिपरिषद की निंदा करने हेतु स्थानांतरित किया जाता है। इसे केवल लोकसभा में ही पेश किया जा सकता है।

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव:

- यह संसद में किसी सदस्य द्वारा तत्काल सार्वजनिक महत्त्व के मामले पर एक मंत्री का ध्यान आकर्षित करने और उस मामले पर एक आधिकारिक बयान के लिये प्रस्तुत किया जाता है।
- इसे राज्यसभा के साथ-साथ लोकसभा में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

स्थगन प्रस्ताव:

- इसे लोकसभा में हाल के किसी अविलंबनीय लोक महत्त्व के परिभाषित मामले पर सदन का ध्यान आकर्षित करने के लिये प्रस्तुत किया जाता है। इसमें सरकार के खिलाफ निंदा का एक तत्त्व शामिल होता है।
- इसे केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

अनियत दिवस प्रस्ताव:

- यह एक ऐसा प्रस्ताव है जिसे अध्यक्ष ने स्वीकार कर लिया हो लेकिन इस पर चर्चा के लिये कोई तारीख तय नहीं की गई हो।
- इसे राज्यसभा के साथ-साथ लोकसभा में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

अविश्वास प्रस्ताव:

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-75 में कहा गया है कि केंद्रीय मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति जवाबदेह है, अर्थात् इस सदन में बहुमत हासिल होने पर ही मंत्रिपरिषद बनी रह सकती है। इसके खिलाफ लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर मंत्रिपरिषद को इस्तीफा देना होता है। प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिये 50 सदस्यों के समर्थन की आवश्यकता होती है।
- इसे केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

कटौती प्रस्ताव:

- कटौती प्रस्ताव लोकसभा के सदस्यों को प्राप्त एक विशेष शक्ति है जो अनुदान मांग के हिस्से के रूप में वित्त विधेयक में सरकार द्वारा विशिष्ट आवंटन के लिये चर्चा की जा रही मांग का विरोध करती है।
- यदि प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह अविश्वास प्रस्ताव के समान होगा और यदि सरकार निम्न सदन में बहुमत सिद्ध करने में विफल रहती है, तो वह सदन के मानदंडों के अनुसार इस्तीफा देने के लिये बाध्य होगी।
- निम्नलिखित में से किसी भी तरीके से मांग में कटौती करने के लिये एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है:
  - नीति कटौती प्रस्ताव: इसके अंतर्गत बजट में मंत्रालय के लिये प्रस्तावित अनुदान को घटाकर एक रुपए करने की मांग की जाती है।
  - अर्थव्यवस्था में कटौती का प्रस्ताव: इसे इस तरह से पेश किया जाता है कि मांग की राशि एक निर्दिष्ट राशि से कम हो।
  - टोकन कटौती प्रस्ताव: इसके अंतर्गत सदस्य किसी मंत्रालय की अनुदान मांगों में से 100 रुपए की टोकन कटौती का प्रस्ताव करते हैं। सरकार से कोई विशेष शिकायत होने पर भी सदस्य ऐसा करते हैं।
- इसे केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

निजी सदस्य विधेयक

चर्चा में क्यों?

हाल ही में राज्यसभा ने संविधान की प्रस्तावना में संशोधन करने के लिये एक निजी सदस्य विधेयक (Private Member's Bill) पेश करने की अनुमति देने का अपना निर्णय सुरक्षित रखा।

- विधेयक प्रस्तावना में दिये गए शब्दों "स्थिति और अवसर की समानता" (EQUALITY of status and of opportunity) को "स्थिति और पैदा होने, पोषण प्राप्त करने, शिक्षित होने, नौकरी पाने के अवसर की समानता और सम्मान के साथ व्यवहार..." (EQUALITY of status and of opportunity to be born, to be fed, to be educated, to get a job and to be treated with dignity) से प्रतिस्थापित करने की मांग करता है।

प्रस्तावना की संशोधनीयता

- संविधान के एक भाग के रूप में संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत प्रस्तावना में तो संशोधन किया जा सकता है, लेकिन प्रस्तावना की मूल संरचना में संशोधन नहीं किया जा सकता है।
  - केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, 1973 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार, संसद संविधान की मूल संरचना को नहीं बदल सकती है।
- संविधान की संरचना प्रस्तावना के मूल तत्त्वों पर आधारित है। अभी तक 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के माध्यम से प्रस्तावना में केवल एक बार संशोधन किया गया है।
  - इसमें तीन नए शब्द जोड़े गए- समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और अखंडता।

प्रमुख बिंदु

- परिचय:
  - संसद के ऐसे सदस्य जो केंद्रीय मंत्रिमंडल में मंत्री (Member of Parliament-MP) नहीं हैं, को एक निजी सदस्य के रूप में जाना जाता है।
  - इसका प्रारूप तैयार करने की ज़िम्मेदारी संबंधित सदस्य की होती है। सदन में इसे पेश करने के लिये एक महीने के नोटिस की आवश्यकता होती है।
  - सरकारी विधेयक/सार्वजनिक विधेयकों को किसी भी दिन पेश किया जा सकता है और उन पर चर्चा की जा सकती है, निजी सदस्यों के विधेयकों को केवल शुक्रवार को पेश किया जा सकता है और उन पर चर्चा की जा सकती है।

- कई विधेयकों के मामले में एक मतपत्र प्रणाली का उपयोग विधेयकों को पेश करने के क्रम को तय करने के लिये किया जाता है।
- निजी सदस्यों के विधेयकों और प्रस्तावों पर संसदीय समिति ऐसे सभी विधेयकों को देखती है और उनकी तात्कालिकता एवं महत्त्व के आधार पर उनका वर्गीकरण करती है।

- सदन द्वारा इसकी अस्वीकृति का सरकार में संसदीय विश्वास या उसके इस्तीफे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
- चर्चा के समापन पर विधेयक का संचालन करने वाला सदस्य या तो संबंधित मंत्री के अनुरोध पर इसे वापस ले सकता है या वह इसके पारित होने के साथ आगे बढ़ने का विकल्प चुन सकता है।

- पूर्ववर्ती निजी विधेयक:
  - पिछली बार दोनों सदनों द्वारा एक निजी सदस्य विधेयक 1970 में पारित किया गया था।
    - यह 'सर्वोच्च न्यायालय (आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार का विस्तार) विधेयक, 1968' था।
  - 14 निजी सदस्य विधेयक- जिनमें से पाँच राज्यसभा में पेश किये गए, अब कानून बन गए हैं। कुछ अन्य निजी जो कानून बन गए हैं, उनमें शामिल हैं-
    - लोकसभा कार्यवाही (प्रकाशन संरक्षण) विधेयक, 1956।
    - संसद सदस्यों के वेतन और भत्ते (संशोधन) विधेयक, 1964, लोकसभा में पेश किया गया।
    - भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1967 राज्यसभा में पेश किया गया।
- महत्त्व:
  - निजी सदस्य विधेयक का उद्देश्य सरकार का ध्यान उस ओर आकर्षित करना है, जो कि सांसदों (मंत्रियों के अतिरिक्त) के मुताबिक, एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है और जिसे विधायी हस्तक्षेप की आवश्यकता है।
    - इस प्रकार यह सार्वजनिक मामलों पर विपक्षी दल के रुख को दर्शाता है।

सरकारी विधेयक बनाम निजी विधेयक

सरकारी विधेयक	निजी विधेयक
इसे संसद में एक मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।	यह मंत्री के अतिरिक्त किसी अन्य सांसद द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।
यह सरकार की नीतियों को प्रदर्शित करता है।	यह विपक्ष की नीतियों को प्रदर्शित करता है।
संसद में इसके पारित होने की संभावना अधिक होती है।	संसद में इसके पारित होने के संभावना कम होती है।
संसद द्वारा सरकारी विधेयक अस्वीकृत होने पर सरकार को इस्तीफा देना पड़ सकता है।	इसके अस्वीकृत होने पर सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
सरकारी विधेयक को संसद में पेश होने के लिये सात दिनों का नोटिस होना चाहिये।	इस विधेयक को संसद में पेश करने के लिये एक महीने का नोटिस होना चाहिये
इसे संबंधित विभाग द्वारा विधि विभाग के परामर्श से तैयार किया जाता है।	इसे संबंधित सदस्य द्वारा तैयार किया जाता है।

विशेषाधिकार प्रस्ताव

चर्चा में क्यों?

राज्यसभा में कॉन्ग्रेस के मुख्य सचेतक ने राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण (NMA) के अध्यक्ष की नियुक्ति को लेकर केंद्रीय संस्कृति मंत्री के खिलाफ विशेषाधिकार प्रस्ताव लाने की मांग की।

- NMA के वर्तमान अध्यक्ष की शैक्षिक और व्यावसायिक पृष्ठभूमि मार्च 2010 में संसद द्वारा पारित कानून की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती है।

राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण (NMA):

- स्थापना: NMA की स्थापना 'प्राचीन स्मारक एवं पुरातत्त्व स्थल और अवशेष (संशोधन और सत्यापन) अधिनियम' (AMASR) के प्रावधानों के अनुसार, संस्कृति मंत्रालय के तहत की गई है, जिसे मार्च 2010 में अधिनियमित किया गया था।
- कार्य: केंद्र द्वारा संरक्षित स्मारकों के आसपास निषिद्ध और विनियमित क्षेत्रों के प्रबंधन के माध्यम से स्मारकों एवं स्थलों के संरक्षण व सुरक्षा के लिये NMA को कई कार्य सौंपे गए हैं।
  - NMA प्रतिबंधित और विनियमित क्षेत्रों में निर्माण संबंधी गतिविधियों के लिये आवेदकों को अनुमति देने पर भी विचार करता है।
- अध्यक्ष की नियुक्ति के लिये योग्यता: AMASR अधिनियम कहता है कि NMA के अध्यक्ष के पास "पुरातत्त्व, देश और नगर नियोजन, वास्तुकला, विरासत, संरक्षण वास्तुकला या कानून के क्षेत्र में अनुभव और विशेषज्ञता होनी चाहिये।"

प्रमुख बिंदु

- परिचय: यह एक मंत्री द्वारा संसदीय विशेषाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित है।

- संसदीय विशेषाधिकारों का उल्लंघन: संसदीय विशेषाधिकार व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से संसद सदस्यों द्वारा प्राप्त कुछ अधिकार और उन्मुक्तियाँ हैं, ताकि वे 'प्रभावी रूप से अपने कार्यों का निर्वहन' कर सकें।
  - जब इनमें से किसी भी अधिकार और उन्मुक्ति की अवहेलना की जाती है, तो अपराध को विशेषाधिकार का उल्लंघन कहा जाता है और यह संसद के कानून के तहत दंडनीय है।
  - किसी भी सदन के सदस्य द्वारा विशेषाधिकार के उल्लंघन के दोषी पाए जाने वाले के खिलाफ प्रस्ताव के रूप में एक नोटिस पेश किया जाता है।
  - इसका मकसद संबंधित मंत्री की निंदा करना है।
- स्पीकर/राज्यसभा (RS) अध्यक्ष की भूमिका:
  - स्पीकर/राज्यसभा अध्यक्ष विशेषाधिकार प्रस्ताव की जाँच का पहला स्तर है।
  - स्पीकर/अध्यक्ष विशेषाधिकार प्रस्ताव पर स्वयं निर्णय ले सकता है या इसे संसद की विशेषाधिकार समिति को संदर्भित कर सकता है।
    - यदि स्पीकर/सभापति प्रासंगिक नियमों के तहत सहमति देता है, तो संबंधित सदस्य को एक संक्षिप्त वक्तव्य देने का अवसर दिया जाता है।
- विशेषाधिकार को नियंत्रित करने वाले नियम:
  - लोकसभा नियम पुस्तिका के अध्याय 20 में नियम संख्या 222 और राज्यसभा नियम पुस्तिका के अध्याय 16 में नियम 187 के अनुरूप विशेषाधिकार को नियंत्रित करती है।
  - नियम कहते हैं कि कोई भी सदस्य, अध्यक्ष या चेयरपर्सन की सहमति से किसी सदस्य या सदन या उससे संबंधित समिति के विशेषाधिकार के उल्लंघन के संबंध में प्रश्न उठा सकता है।

संसदीय विशेषाधिकार

- संसदीय विशेषाधिकार का आशय संसद के दोनों सदनों, उनकी समितियों और उनके सदस्यों द्वारा प्राप्त विशेष अधिकार, उन्मुक्तियाँ और छूट प्रदान करना है।
- संविधान उन व्यक्तियों को भी संसदीय विशेषाधिकार प्रदान करता है जो संसद के किसी सदन या उसकी किसी समिति की कार्यवाही में बोलने और भाग लेने के हकदार हैं। इनमें भारत के महान्यायवादी और केंद्रीय मंत्री शामिल हैं।
- संसदीय विशेषाधिकार राष्ट्रपति को नहीं मिलते जो संसद का अभिन्न अंग भी है। संविधान का अनुच्छेद 361 राष्ट्रपति को विशेषाधिकार प्रदान करता है।
- संविधान के अनुच्छेद 105 में स्पष्ट रूप से दो विशेषाधिकारों का उल्लेख है, अर्थात् संसद में बोलने की स्वतंत्रता और इसकी कार्यवाही के प्रकाशन का अधिकार।
- संविधान में निर्दिष्ट विशेषाधिकारों के अलावा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 सदन या उसकी समिति की बैठक के दौरान और उसके प्रारंभ होने से 40 दिन पहले तथा इसके समापन के 40 दिन बाद तक सिविल प्रक्रिया के अंतर्गत सदस्यों को गिरफ्तारी व हिरासत से मुक्ति प्रदान कर सकती है।
- ध्यातव्य है कि संसद ने अब तक सभी विशेषाधिकारों को व्यापक रूप से संहिताबद्ध करने हेतु कोई विशेष कानून नहीं बनाया है।

विशेषाधिकार समिति

- यह एक स्थायी समिति है। यह सदन और उसके सदस्यों के विशेषाधिकारों के उल्लंघन के मामलों की जाँच करती है तथा उचित कार्रवाई की सिफारिश करती है।
- लोकसभा समिति में 15 सदस्य होते हैं, जबकि राज्यसभा समिति में 10 सदस्य होते हैं।

डिप्टी स्पीकर चुनाव

चर्चा में क्यों?

हाल ही में उत्तर प्रदेश के एक विधायक को उत्तर प्रदेश विधानसभा का डिप्टी स्पीकर चुना गया था।

- संविधान का अनुच्छेद 93 लोकसभा के स्पीकर और डिप्टी स्पीकर दोनों के चुनाव का प्रावधान करता है।
- अनुच्छेद 178 में किसी राज्य की विधानसभा के स्पीकर और डिप्टी स्पीकर पदों से संबंधित प्रावधान शामिल हैं।

प्रमुख बिंदु

- डिप्टी स्पीकर:
  - निर्वाचन मंडल:
    - लोकसभा स्पीकर का चुनाव होने के ठीक बाद डिप्टी स्पीकर का चुनाव अपने सदस्यों में से लोकसभा द्वारा किया जाता है।
    - डिप्टी स्पीकर के चुनाव की तिथि स्पीकर द्वारा निर्धारित की जाती है (स्पीकर के चुनाव की तिथि राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती है)।
    - भारत सरकार अधिनियम, 1919 (मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार) के प्रावधानों के तहत 1921 में स्पीकर और डिप्टी स्पीकर पदों की शुरुआत भारत में हुई थी।
    - उस समय स्पीकर और डिप्टी स्पीकर को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष कहा जाता था और यही नाम वर्ष 1947 तक चलता रहा।

- समयसीमा और चुनाव के नियम:
  - लोकसभा और राज्य विधानसभाओं दोनों में नए सदन के पहले सत्र के दौरान स्पीकर का चुनाव करने की प्रथा रही है, आमतौर पर तीसरे दिन शपथ लेने और पहले दो दिनों में प्रतिज्ञान होने के बाद।
  - डिप्टी स्पीकर का चुनाव आमतौर पर दूसरे सत्र में होता है, भले ही इस चुनाव के नई लोकसभा/विधानसभा के पहले सत्र में भी होने पर कोई रोक नहीं है।
  - लेकिन डिप्टी स्पीकर का चुनाव आमतौर पर दूसरे सत्र से परे वास्तविक और अपरिहार्य बाधाओं के बिना विलंबित नहीं होता है।
  - लोकसभा में डिप्टी स्पीकर का चुनाव लोकसभा में प्रक्रिया और कार्य संचालन के नियमों के नियम 8 द्वारा शासित होता है।
  - एक बार निर्वाचित होने के बाद डिप्टी स्पीकर आमतौर पर सदन के विघटन तक पद पर बना रहता है।
- कार्यकाल और निष्कासन:
  - स्पीकर की तरह डिप्टी स्पीकर आमतौर पर लोकसभा की अवधि (5 वर्ष) के दौरान पद पर बना रहता है।
  - डिप्टी स्पीकर निम्नलिखित तीन मामलों में से किसी में भी अपना पद पहले छोड़ सकता है:
  - यदि वह लोकसभा का सदस्य नहीं रहता है।
  - यदि वह स्पीकर को पत्र लिखकर त्यागपत्र देता है।
  - यदि उसे लोकसभा के सभी तत्कालीन सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव द्वारा हटा दिया जाता है।
  - ऐसा प्रस्ताव 14 दिन की अग्रिम सूचना देने के बाद ही पेश किया जा सकता है।
  - राज्य विधानसभा के मामले में हटाने की प्रक्रिया लोकसभा के स्पीकर और डिप्टी स्पीकर की तरह ही है।
- उत्तरदायित्व और शक्तियाँ (लोकसभा के उपसभापति):
  - संविधान के अनुच्छेद 95 के तहत उपसभापति स्पीकर की अनुपस्थिति में उसके कर्तव्यों का पालन करता है।
  - वह स्पीकर के रूप में भी कार्य करता है जब सामान्य स्पीकर सदन की बैठक से अनुपस्थित रहता है।
  - यदि स्पीकर ऐसी बैठक से अनुपस्थित रहता है तो वह संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता भी करता है।
  - डिप्टी स्पीकर के पास एक विशेष विशेषाधिकार होता है अर्थात् जब भी उसे संसदीय समिति के सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाता है, तो वह स्वत: ही उसका अध्यक्ष बन जाता है।

- उपसभापति और दसवीं अनुसूची (अपवाद):
  - दसवीं अनुसूची के पैरा 5 (आमतौर पर दलबदल विरोधी कानून के रूप में जाना जाता है) के अनुसार, एक व्यक्ति जो स्पीकर/डिप्टी स्पीकर चुना गया है, उसे अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा:
    - यदि वह उस पद के लिये अपने निर्वाचन के कारण स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है जिसमें वह चुनाव से ठीक पहले था,
    - वह तब तक इस पद पर बना रहता है, जब तक उस राजनीतिक दल में फिर से शामिल नहीं होता है या किसी अन्य राजनीतिक दल का सदस्य नहीं बनता है।
  - यह छूट राज्यसभा के उपसभापति, राज्य विधानपरिषद के सभापति/उपसभापति और राज्य विधानसभा के स्पीकर/उपसभापति पर भी लागू होती है।

दलबदल कानून

चर्चा में क्यों?

हाल ही में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पश्चिम बंगाल विधानसभा अध्यक्ष को एक विधानसभा सदस्य से जुड़े दलबदल मामले में निर्धारित समय सीमा के भीतर आदेश पारित करने का निर्देश दिया है।

- झारखंड और राजस्थान जैसे अन्य राज्यों में भी दलबदल विरोधी कार्यवाही चल रही है।

प्रमुख बिंदु

- दल-बदल विरोधी कानून के बारे में:
  - दल-बदल विरोधी कानून संसद/विधान सभा सदस्यों को एक पार्टी से दूसरी पार्टी में शामिल होने पर दंडित करता है।
  - संसद ने इसे 1985 में दसवीं अनुसूची के रूप में संविधान में जोड़ा। इसका उद्देश्य दल बदलने वाले विधायकों को हतोत्साहित कर सरकारों में स्थिरता लाना था।
    - दसवीं अनुसूची: जिसे दलबदल विरोधी अधिनियम के रूप में जाना जाता है, को 52वें संशोधन अधिनियम, 1985 के माध्यम से संविधान में शामिल किया गया था और यह किसी अन्य राजनीतिक दल में दलबदल के आधार पर निर्वाचित सदस्यों की अयोग्यता के लिये प्रावधान निर्धारित करता है।
  - हालाँकि यह सांसद/विधायकों के एक समूह को दलबदल के लिये दंड के बिना किसी अन्य राजनीतिक दल में शामिल होने (अर्थात् विलय) की अनुमति देता है। इस प्रकार यह दलबदल करने वाले विधायकों को प्रोत्साहित करने या स्वीकार करने के लिये राजनीतिक दलों को दंडित नहीं करता है।

- 1985 के अधिनियम के अनुसार, एक राजनीतिक दल के निर्वाचित सदस्यों के एक-तिहाई सदस्यों द्वारा 'दलबदल' को 'विलय' माना जाता था।
- 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के अनुसार, दलबदल विरोधी कानून में एक राजनीतिक दल को किसी अन्य राजनीतिक दल में या उसके साथ विलय करने की अनुमति दी गई है, बशर्ते कि उसके कम-से-कम दो-तिहाई सदस्य विलय के पक्ष में हों।

- इस प्रकार इस कानून के तहत एक बार अयोग्य सदस्य उसी सदन की किसी सीट पर किसी भी राजनीतिक दल से चुनाव लड़ सकते हैं।
- दलबदल के आधार पर अयोग्यता संबंधी प्रश्नों पर निर्णय के लिये मामले को सदन के सभापति या अध्यक्ष के पास भेजा जाता है, जो कि 'न्यायिक समीक्षा' के अधीन होता है।
  - हालाँकि कानून एक समय-सीमा प्रदान नहीं करता है जिसके भीतर पीठासीन अधिकारी को दलबदल के मामले का फैसला करना होता है।

- अयोग्यता का आधार:
  - यदि एक निर्वाचित सदस्य स्वेच्छा से किसी राजनीतिक दल की सदस्यता को छोड़ देता है।
  - यदि वह पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना अपने राजनीतिक दल या ऐसा करने के लिये अधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा जारी किसी भी निर्देश के विपरीत सदन में मतदान करता है या मतदान से दूर रहता है।
    - उसकी अयोग्यता के लिये पूर्व शर्त के रूप में ऐसी घटना के 15 दिनों के भीतर उसकी पार्टी या अधिकृत व्यक्ति द्वारा मतदान से मना नहीं किया जाना चाहिये।
  - यदि कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
  - यदि छह महीने की समाप्ति के बाद कोई मनोनीत सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
- संबंधित मुद्दे:
  - प्रतिनिधि और संसदीय लोकतंत्र को कमज़ोर करना:
    - दलबदल विरोधी कानून के लागू होने के पश्चात् सांसद या विधायक को पार्टी के निर्देशों का पूर्ण रूप से पालन करना होता है।
    - यह उन्हें किसी भी मुद्दे पर अपने निर्णय के अनुरूप वोट देने की स्वतंत्रता नहीं देता है जिससे प्रतिनिधि लोकतंत्र कमज़ोर होता है।
  - अध्यक्ष की विवादास्पद भूमिका:
    - कई उदाहरणों में अध्यक्ष (आमतौर पर सत्ताधारी दल से) ने अयोग्यता पर निर्णय लेने में देरी की है।
  - विभाजन की कोई मान्यता नहीं:
    - 91वें संवैधानिक संशोधन 2004 के कारण दलबदल विरोधी कानून ने दलबदल विरोधी शासन को एक अपवाद बनाया।
    - हालाँकि यह संशोधन किसी पार्टी में 'विभाजन' को मान्यता नहीं देता है बल्कि इसके बजाय 'विलय' को मान्यता देता है।
  - चुनावी जनादेश का उल्लंघन:
    - दलबदल उन विधायकों द्वारा चुनावी जनादेश का अपमान है जो एक पार्टी के टिकट पर चुने जाते हैं, लेकिन फिर मंत्री पद या वित्तीय लाभ के लालच के चलते दूसरे में स्थानांतरित होना सुविधाजनक समझते हैं।
  - सरकार के सामान्य कामकाज पर प्रभाव:
    - 1960 के दशक में विधायकों द्वारा लगातार दलबदल की पृष्ठभूमि के खिलाफ कुख्यात "आया राम, गया राम" का नारा गढ़ा गया था। दलबदल के कारण सरकार में अस्थिरता पैदा होती है और प्रशासन प्रभावित होता है।
  - हॉर्स-ट्रेडिंग को बढ़ावा:
    - दलबदल विधायकों के खरीद-फरोख्त को भी बढ़ावा देता है जो स्पष्ट रूप से एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के जनादेश के खिलाफ माना जाता है।
- सुझाव:
  - चुनाव आयोग ने सुझाव दिया है कि दलबदल के मामलों में इसे निर्णायक प्राधिकारी होना चाहिये।
  - दूसरों ने तर्क दिया है कि राष्ट्रपति और राज्यपालों को दलबदल याचिकाओं पर सुनवाई करनी चाहिये।
  - सर्वोच्च न्यायालय ने सुझाव दिया है कि संसद को उच्च न्यायपालिका के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में स्वतंत्र न्यायाधिकरण का गठन करना चाहिये ताकि दलबदल के मामलों में तेज़ी और निष्पक्ष रूप से फैसला किया जा सके।
  - कुछ टिप्पणीकारों ने कहा है कि यह कानून विफल हो गया है और इसे हटाने की सिफारिश की है। पूर्व उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने सुझाव दिया है कि यह केवल अविश्वास प्रस्ताव में सरकारों को बचाने के लिये लागू होता है।

संसदीय सत्र

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में मंत्रिपरिषद और कैबिनेट समितियों में फेरबदल के बाद संसद का मानसून सत्र शुरू हुआ है।

प्रमुख बिंदु

संसदीय सत्र

- संसद के सत्र के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 85 में प्रावधान किया गया है।
- संसद के किसी सत्र को बुलाने की शक्ति सरकार के पास है।
  - यह निर्णय संसदीय मामलों की कैबिनेट समिति द्वारा लिया जाता है जिसे राष्ट्रपति द्वारा औपचारिक रूप दिया जाता है। राष्ट्रपति के नाम पर ही संसद सदस्यों को संसदीय सत्र की बैठक के लिये बुलाया जाता है।
- भारत में कोई निश्चित संसदीय कैलेंडर नहीं है। परंपरा (अर्थात् संविधान द्वारा प्रदान नहीं किया गया) के मुताबिक संसद के एक वर्ष में तीन सत्र होते हैं।
  - सबसे लंबा, बजट सत्र (पहला सत्र) जनवरी के अंत में शुरू होता है और अप्रैल के अंत या मई के पहले सप्ताह तक समाप्त हो जाता है।
  - दूसरा सत्र तीन सप्ताह का मानसून सत्र है, जो आमतौर पर जुलाई माह में शुरू होता है और अगस्त में खत्म होता है।
  - शीतकालीन सत्र यानी तीसरे सत्र का आयोजन नवंबर से दिसंबर तक किया जाता है।

संसद सत्र आहूत करना:

- सम्मन (Summoning) संसद के सभी सदस्यों को बैठक के लिये बुलाने की प्रक्रिया है। सत्र को आहूत करने के लिये राष्ट्रपति संसद के प्रत्येक सदन को समय-समय पर सम्मन जारी करता है, परंतु संसद के दोनों सत्रों के मध्य अधिकतम अंतराल 6 माह से ज़्यादा का नहीं होना चाहिये। अर्थात् संसद सत्र का आयोजन वर्ष में कम-से-कम दो बार किया जाना चाहिये।

स्थगन:

- स्थगन की स्थिति में सभा की बैठक समाप्त हो जाती है और सभा अगली बैठक के लिये नियत समय पर पुन: समवेत होती है। स्थगन एक निर्दिष्ट समय के लिये हो सकता है जैसे घंटे, दिन या सप्ताह।
- यदि सभा को अगली बैठक के लिये निर्धारित किसी निश्चित समय/तिथि के बिना समाप्त कर दिया जाता है, तो इसे अनिश्चित काल के लिये स्थगन कहा जाता है।
- स्थगन और अनिश्चित काल के लिये स्थगन की शक्ति सदन के पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष या सभापति) के पास होती है।

सत्रावसान:

- सत्रावसान का आशय सत्र का समाप्त होना है, न कि विघटन (लोकसभा के मामले में क्योंकि राज्यसभा भंग नहीं होती है)।
- सत्रावसान भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।

कोरम:

- कोरम अथवा गणपूर्ति का तात्पर्य सदन की बैठक आयोजित करने हेतु उपस्थित आवश्यक सदस्यों की न्यूनतम संख्या से है।
- संविधान द्वारा लोकसभा और राज्यसभा दोनों के लिये कोरम हेतु सदस्यों की संख्या कुल सदस्य संख्या का 1/10 निर्धारित की गई है।
- इस प्रकार लोकसभा की बैठक के संचालन हेतु कम-से-कम 55 सदस्य, जबकि राज्यसभा की बैठक के संचालन के लिये कम-से-कम 25 सदस्य उपस्थित होने चाहिये।

संसद का संयुक्त सत्र (अनुच्छेद 108):

- किसी विधेयक पर संसद के दोनों सदनों (लोकसभा तथा राज्यसभा) के मध्य गतिरोध की स्थिति में संविधान द्वारा संयुक्त बैठक की व्यवस्था की गई है।
- संयुक्त बैठक राष्ट्रपति द्वारा बुलाई जाती है। संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा का अध्यक्ष करता है तथा उसकी अनुपस्थिति में लोकसभा का उपाध्यक्ष यह दायित्व निभाता है यदि वह भी अनुपस्थित हो तो इस स्थिति में राज्यसभा का उपसभापति इस दायित्व को निभाता है।
  - यदि उपरोक्त में से कोई भी उपस्थित न हो तो दोनों सदनों की सहमति से संसद का कोई अन्य सदस्य इसकी अध्यक्षता कर सकता है।

मंत्रिपरिषद

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में प्रधानमंत्री ने अपने मंत्रिपरिषद (Council Of Ministers-COM) का विस्तार तथा उसमें फेरबदल किया। प्रधानमंत्री की मंत्रिपरिषद में वर्तमान में 77 मंत्री हैं, जिनमें लगभग 50% मंत्री नए हैं।

प्रमुख बिंदु

परिचय :

- संविधान के अनुच्छेद 74 में मंत्रिपरिषद के गठन के बारे में उल्लेख किया गया है जबकि अनुच्छेद 75 मंत्रियों की नियुक्ति, उनके कार्यकाल, ज़िम्मेदारी, शपथ, योग्यता और मंत्रियों के वेतन एवं भत्ते से संबंधित है।

- मंत्रिपरिषद में मंत्रियों की तीन श्रेणियाँ होती हैं, अर्थात् कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री और उप मंत्री। इन सभी मंत्रियों में शीर्ष स्थान पर प्रधानमंत्री होता है।
  - कैबिनेट मंत्री: ये केंद्र सरकार के महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों जैसे-गृह, रक्षा, वित्त, विदेश मामलों आदि के प्रमुख होते हैं।
    - कैबिनेट केंद्र सरकार के महत्त्वपूर्ण मामलों में नीति निर्धारण निकाय है।
  - राज्य मंत्री: इन्हें या तो मंत्रालयों/विभागों का स्वतंत्र प्रभार दिया जा सकता है या कैबिनेट मंत्रियों से संबद्ध किया जा सकता है।
  - उप मंत्री: ये कैबिनेट मंत्रियों या राज्य मंत्रियों से संबंधित होते हैं तथा उनके प्रशासनिक, राजनीतिक और संसदीय कर्तव्यों में उनकी सहायता करते हैं।
- कभी-कभी मंत्रिपरिषद में एक उप प्रधानमंत्री भी शामिल हो सकता है। उप प्रधानमंत्री की नियुक्ति अधिकतर राजनीतिक कारणों से की जाती है।

संवैधानिक प्रावधान:

- अनुच्छेद 74 (राष्ट्रपति की सहायता और उसे सलाह देने के लिये मंत्रिपरिषद): मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह की किसी भी अदालत में जाँच नहीं की जाएगी।
  - राष्ट्रपति को पुनर्विचार करने के लिये मंत्रिपरिषद की आवश्यकता हो सकती है और राष्ट्रपति पुनर्विचार के बाद दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा।
- अनुच्छेद 75 (मंत्रियों के रूप में अन्य प्रावधान): प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की सलाह पर की जाएगी।
  - मंत्रिपरिषद में प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों की कुल संख्या लोकसभा की कुल संख्या के 15% से अधिक नहीं होनी चाहिये।
    - यह प्रावधान वर्ष 2003 के 91वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था।
  - मंत्रियों के लिये यह ज़रूरी है कि वे संसद के सदस्य हों, यदि संबंधित व्यक्ति संसद की सदस्यता के बिना मंत्री बनता है तो उसे छः महीने के भीतर संसद का सदस्य होना पड़ेगा, ऐसा न हो पाने की स्थिति में उसे अपना मंत्री पद छोड़ना पड़ेगा।
- अनुच्छेद 77 (भारत सरकार के कार्यों का संचालन): राष्ट्रपति भारत सरकार के व्यवसाय को अधिक सुविधाजनक और मंत्रियों के बीच उक्त व्यवसाय के आवंटन के लिये नियम बनाएगा।
- अनुच्छेद 78 (प्रधानमंत्री के कर्तव्य): मंत्रिपरिषद द्वारा लिये गए संघ के प्रशासन और कानून के प्रस्तावों से संबंधित सभी निर्णयों को राष्ट्रपति को सूचित करना।
- अनुच्छेद 88 (सदनों के संबंध में मंत्रियों के अधिकार): प्रत्येक मंत्री को किसी भी सदन की कार्यवाही, सदनों की किसी भी संयुक्त बैठक और संसद की किसी भी समिति, जिसका वह सदस्य नामित किया जा सकता है, की कार्यवाही में बोलने तथा भाग लेने का अधिकार होगा लेकिन उसे वोट देने का अधिकार नहीं होगा।

मंत्रियों के उत्तरदायित्व:

- सामूहिक उत्तरदायित्व:
  - अनुच्छेद 75 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसका तात्पर्य यह है कि सभी मंत्री अपने सभी भूल और कार्यों के लिये लोकसभा के प्रति संयुक्त रुप से ज़िम्मेदार हैं।
- व्यक्तिगत उत्तरदायित्व:
  - अनुच्छेद 75 में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धांत भी शामिल है। इसमें कहा गया है कि मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं, जिसका अर्थ है कि राष्ट्रपति किसी मंत्री को ऐसे समय में भी हटा सकता है जब मंत्रिपरिषद को लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो।
  - हालाँकि राष्ट्रपति किसी भी मंत्री को प्रधानमंत्री की सलाह पर ही हटाता है।

राज्यों में मंत्रिपरिषद:

- अनुच्छेद 163 केंद्र में मंत्रिपरिषद के समान राज्यों में मंत्रिपरिषद के गठन और कार्यों का प्रावधान करता है (अनुच्छेद 163: राज्यपाल की सहायता और उसे सलाह देने के लिये COM) और अनुच्छेद 164: मंत्रियों के रूप में अन्य प्रावधान)।

भारत का महान्यायवादी

चर्चा में क्यों?

केंद्र सरकार ने के.के. वेणुगोपाल के कार्यकाल को एक वर्ष के लिये बढ़ा दिया है और वेणुगोपाल को महान्यायवादी (Attorney General- AG) के रूप में नियुक्त किया है।

- यह दूसरी बार है जब केंद्र ने उनका कार्यकाल बढ़ाया है। वर्ष 2020 में वेणुगोपाल के पहले कार्यकाल को बढ़ाया गया था।
- वेणुगोपाल को वर्ष 2017 में भारत का 15वाँ महान्यायवादी नियुक्त किया गया था। उन्होंने मुकुल रोहतगी का स्थान लिया जो वर्ष 2014-2017 तक महान्यायवादी रहे।
- वह सर्वोच्च न्यायालय में लंबित कई संवेदनशील मामलों में सरकार के कानूनी बचाव की कमान संभालेंगे जिसमें संविधान के अनुच्छेद 370 और नागरिकता संशोधन अधिनियम को निरस्त करने की चुनौती शामिल है।

प्रमुख बिंदु

- परिचय:
  - भारत का महान्यायवादी (AG) संघ की कार्यकारिणी का एक अंग है। AG देश का सर्वोच्च कानून अधिकारी है।
  - संविधान के अनुच्छेद 76 में भारत के महान्यायवादी के पद का प्रावधान है।
- नियुक्ति और पात्रता:
  - महान्यायवादी की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सरकार की सलाह पर की जाती है।
  - वह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के योग्य हो, अर्थात् वह भारत का नागरिक हो, उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने का पाँच वर्षों का अनुभव हो या किसी उच्च न्यायालय में वकालत का 10 वर्षों का अनुभव हो अथवा राष्ट्रपति के मतानुसार वह न्यायिक मामलों का योग्य व्यक्ति हो।
- कार्यालय की अवधि: संविधान द्वारा तय नहीं।
- निष्कासन: महान्यायवादी को हटाने की प्रक्रिया और आधार संविधान में नहीं बताए गए हैं। वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है (राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय हटाया जा सकता है)।
- कर्तव्य और कार्य:
  - ऐसे कानूनी मामलों पर भारत सरकार (Government of India- GoI) को सलाह देना, जो राष्ट्रपति द्वारा उसे भेजे जाते हैं।
  - कानूनी रूप से ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करना जो उसे राष्ट्रपति द्वारा सौंपे जाते हैं।
    - भारत सरकार की ओर से उन सभी मामलों में जो कि भारत सरकार से संबंधित हैं, सर्वोच्च न्यायालय या किसी भी उच्च न्यायालय में उपस्थित होना।
    - संविधान के अनुच्छेद 143 (सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श करने की राष्ट्रपति की शक्ति) के तहत राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में किये गए किसी भी संदर्भ में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करना।
  - संविधान या किसी अन्य कानून द्वारा उसे प्रदत्त कार्यों का निर्वहन करना।
- अधिकार और सीमाएँ:
  - वोट देने के अधिकार के बिना उसे संसद के दोनों सदनों या उनकी संयुक्त बैठक और संसद की किसी भी समिति की कार्यवाही में बोलने तथा भाग लेने का अधिकार है, जिसका वह सदस्य नामित किया जाता है।
  - वह उन सभी विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का हकदार होता है जो एक संसद सदस्य को प्राप्त होते हैं।
  - वह सरकारी सेवकों की श्रेणी में नहीं आता है, अत: उसे निजी कानूनी अभ्यास से वंचित नहीं किया जाता है।
  - हालाँकि उसे भारत सरकार के खिलाफ किसी मामले में सलाह या संक्षिप्त जानकारी देने का अधिकार नहीं है।
- भारत के सॉलिसिटर जनरल (Solicitor General of India) और भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल (Additional Solicitor General) आधिकारिक ज़िम्मेदारियों को पूरा करने में महान्यायवादी की सहायता करते हैं।
- महाधिवक्ता (अनुच्छेद 165): राज्यों से संबंधित ।

CBI निदेशक की नियुक्ति

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में केंद्र सरकार ने 'सुबोध कुमार जायसवाल' को केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (Central Bureau of Investigation-CBI) का नया निदेशक नियुक्त किया है।

- CBI के निदेशक की नियुक्ति दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम (Delhi Special Police Establishment Act), 1946 की धारा 4ए के तहत की जाती है।

प्रमुख बिंदु

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) के बारे में:

- CBI की स्थापना वर्ष 1963 में गृह मंत्रालय के एक प्रस्ताव द्वारा की गई थी।
  - अब CBI कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग (Department of Personnel and Training- DoPT) के प्रशासनिक नियंत्रण में आता है।
- भ्रष्टाचार की रोकथाम पर संथानम समिति (1962-1964) द्वारा CBI की स्थापना की सिफारिश की गई थी।
- CBI एक वैधानिक निकाय नहीं है। यह दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 से अपनी शक्तियाँ प्राप्त करता है।
- केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (Central Bureau of Investigation-CBI) केंद्र सरकार की एक प्रमुख अन्वेषण एजेंसी है।
  - यह केंद्रीय सतर्कता आयोग और लोकपाल को भी सहायता प्रदान करता है।
  - यह भारत में नोडल पुलिस एजेंसी भी है जो इंटरपोल सदस्य देशों की ओर से जाँच का समन्वय करती है।

- CBI का नेतृत्व एक निदेशक करता है।
- CBI के पास IPC में 69 केंद्रीय कानूनों, 18 राज्य अधिनियमों और 231 अपराधों से संबंधित अपराधों की जाँच करने का अधिकार क्षेत्र है।

CBI निदेशक की नियुक्ति:

- CBI का निदेशक पुलिस महानिरीक्षक, दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के रूप में संगठन के प्रशासन के लिये ज़िम्मेदार है।
- लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम (2013) ने दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम (1946) में संशोधन किया और CBI के निदेशक की नियुक्ति के संबंध में निम्नलिखित परिवर्तन किये।
  - नियुक्ति समिति: केंद्र सरकार तीन सदस्यीय समिति की सिफारिश पर CBI के निदेशक की नियुक्ति करेगी जिसमें अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्ष का नेता और भारत का मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामित सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश शामिल होंगे।
- दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना (संशोधन) अधिनियम, 2014 ने CBI के निदेशक की नियुक्ति से संबंधित समिति की संरचना में बदलाव किया।
  - इसमें कहा गया है कि जहाँ लोकसभा में विपक्ष का कोई मान्यता प्राप्त नेता नहीं है, लोकसभा में सबसे बड़े विपक्षी दल का नेता उस समिति का सदस्य होगा।
- निदेशक का कार्यकाल: CBI के निदेशक को CVC अधिनियम, 2003 द्वारा दो वर्ष के कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की गई है।

CBI निदेशक से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले:

- छह महीने के न्यूनतम अवशिष्ट कार्यकाल नियम को सर्वोच्च न्यायालय ने मार्च 2019 के आदेश में पेश किया था।
  - छह महीने से कम के कार्यकाल वाले किसी भी अधिकारी को प्रमुख पद के लिये विचार नहीं किया जा सकता है।
  - हालाँकि प्रकाश सिंह मामले में आदेश DGP की नियुक्ति से संबंधित था, लेकिन इसे CBI निदेशक तक भी बढ़ा दिया गया था।
- प्रकाश सिंह मामले, 2006 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि DGP की नियुक्ति "पूरी तरह से योग्यता के आधार पर और कार्यालय को सभी प्रकार के प्रभावों और दबावों से बचाने के लिये होनी चाहिये"।
  - उच्च स्तरीय समिति की पूर्व सहमति के बिना उसका तबादला नहीं किया जा सकता है।
- भारत संघ बनाम सी. दिनाकर (Union of India versus C. Dinakar), 2001 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि "आमतौर पर CBI निदेशक की सेवानिवृत्ति की तिथि पर सेवा में सबसे वरिष्ठ चार बैचों के IPS अधिकारी उनके पैनल के बावजूद CBI निदेशक के पद पर नियुक्ति के लिये विचार के पात्र होंगे।"

अमेरिकी राष्ट्रपति पर महाभियोग

चर्चा में क्यों?

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप अपने कार्यकाल में दो बार महाभियोग का सामना करने वाले पहले अमेरिकी राष्ट्रपति बन गए हैं। अमेरिकी कॉन्ग्रेस ने उन पर विद्रोह भड़काने का आरोप लगाया गया है।

- ज्ञात हो कि 06 जनवरी, 2021 को जब नवनिर्वाचित राष्ट्रपति जो बिडेन की जीत को प्रमाणित करने के लिये अमेरिकी कॉन्ग्रेस का सत्र शुरू हुआ तो डोनाल्ड ट्रंप के समर्थकों ने कैपिटल बिल्डिंग (जहाँ अमेरिकी संसद स्थित है) पर कब्ज़ा करने का असफल प्रयास किया।

प्रमुख बिंदु

अमेरिकी राष्ट्रपति पर महाभियोग

- दो सदन: संयुक्त राज्य अमेरिका की विधायिका यानी संयुक्त राज्य अमेरिका की कॉन्ग्रेस में कुल दो सदन हैं:
  - सीनेट में प्रत्येक राज्य से दो प्रतिनिधि (सीनेटर) चुने जाते हैं, चाहे उस राज्य की आबादी कितनी भी हो।
  - हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स, जिसमें सदस्यों का चुनाव राज्य की जनसंख्या के आधार पर किया जाता है।
- महाभियोग का कारण: अमेरिकी संविधान के मुताबिक, अमेरिका के राष्ट्रपति को देशद्रोह, रिश्वत लेने अथवा किसी अन्य गंभीर अपराध या दुष्कर्म के कारण पद से हटाया जा सकता है।
- पूर्ववर्ती महाभियोग
  - अब तक तीन अमेरिकी राष्ट्रपतियों- डोनाल्ड ट्रंप (वर्ष 2019), बिल क्लिंटन (वर्ष 1998) और एंड्रयू जॉनसन (वर्ष 1868) पर हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स द्वारा महाभियोग चलाया गया है, हालाँकि सभी को सीनेट में विमुक्त कर दिया गया।
  - इस प्रकार किसी भी अमेरिकी राष्ट्रपति को अब तक महाभियोग द्वारा पद से हटाया नहीं गया है।

भारत में राष्ट्रपति पर महाभियोग संबंधी प्रावधान

- भारत में राष्ट्रपति को केवल 'संविधान का उल्लंघन' करने की स्थिति में ही हटाया जा सकता है, साथ ही भारतीय संविधान में 'संविधान के उल्लंघन' के अर्थ को परिभाषित नहीं किया गया है।
- महाभियोग की प्रक्रिया संसद के किसी भी सदन- लोकसभा अथवा राज्यसभा द्वारा शुरू की जा सकती है।

भारत और अमेरिका में राष्ट्रपति पर महाभियोग संबंधी तंत्र

भारतीय राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रकिया (अनुच्छेद 61)	अमेरिकी राष्ट्रपति पर महाभियोग पर की प्रक्रिया
भारतीय राष्ट्रपति को 'संविधान के उल्लंघन' के मामले में महाभियोग की प्रकिया के माध्यम से पद से हटाया जा सकता है। महाभियोग की प्रकिया को संसद के किसी भी सदन द्वारा शुरू किया जा सकता है।	हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स का कोई भी सदस्य महाभियोग के प्रस्ताव को प्रस्तुत कर सकता है यदि उसे संदेह है कि राष्ट्रपति 'राजद्रोह, रिश्वतखोरी अथवा किसी अन्य गंभीर अपराध या दुष्कर्म का दोषी है।'
जिस भी सदन में प्रकिया शुरू की गई है, उसके एक-चौथाई सदस्यों द्वारा संबंधित प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किया जाना आवश्यक है, तभी सदन द्वारा उस पर विचार किया जाता है, जिसके बाद राष्ट्रपति को 14 दिन का नोटिस दिया जाता है।	हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स में सामान्य बहुमत (51 प्रतिशत) के माध्यम से महाभियोग की प्रकिया शुरू की जा सकती है, इसके बाद प्रकिया ट्रायल की और बढ़ती है।
संसद के किसी एक सदन द्वारा महाभियोग प्रस्ताव के पारित (सदन की कुल सदस्यता के दो-तिहाई बहुमत से) होने के बाद, उसे विचार हेतु दूसरे सदन में भेजा जाता है।	ट्रायल की शुरुआत होती है, सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश इसकी अध्यक्षता करता है, जबकि अभियोजन पक्ष के सदस्य और सीनेटर एक निर्णायक मंडल के रूप में कार्य करते हैं। राष्ट्रपति अपनी ओर से एक वकील की नियुक्ति कर सकता है।
यदि अन्य सदन द्वारा भी दो-तिहाई बहुमत से महाभियोग प्रस्ताव को पारित कर दिया जाता है, तो राष्ट्रपति को उस प्रस्ताव के पारित होने की तिथि से उसे पद से हटाया जा सकता है।	ट्रायल के अंत में, सीनेट के सदस्यों द्वारा वोट किया जाता है और यदि कम-से-कम दो-तिहाई (67 प्रतिशत) सीनेटर राष्ट्रपति को अपराध का दोषी मानते हैं, तो राष्ट्रपति को पद से हटा दिया जाता है और शेष कार्यकाल के लिये उप-राष्ट्रपति पदभार संभाल लेता है।

अनुदान की अनुपूरक मांग

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सरकार ने लोकसभा में अनुदान की अनुपूरक मांगों का तीसरा बैच पेश किया है।

अनुदान की अनुपूरक मांग क्या है?

- इस अनुदान की आवश्यकता तब होती है जब संसद द्वारा वर्तमान वित्त वर्ष के लिये किसी विशेष सेवा हेतु विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) के माध्यम से अधिकृत राशि अपर्याप्त पाई जाती है।
- यह अनुदान वित्तीय वर्ष की समाप्ति से पहले संसद द्वारा प्रस्तुत और पारित किया जाता है।

अनुदान के अन्य प्रकार:

- अतिरिक्त अनुदान (Additional Grant): यह अनुदान उस समय प्रदान किया जाता है जब सरकार को उस वर्ष के वित्तीय विवरण में परिकल्पित/अनुध्यात सेवाओं के अतिरिक्त किसी नई सेवा के लिये धन की आवश्यकता होती है।
- अधिक अनुदान (Excess Grant): यह तब प्रदान किया जाता है जब किसी सेवा पर उस वित्तीय वर्ष में निर्धारित (उस वर्ष में संबंधित सेवा के लिये) या अनुदान किये गए धन से अधिक व्यय हो जाता है। इस पर लोकसभा द्वारा वित्तीय वर्ष खत्म होने के बाद मतदान किया जाता है। मतदान के लिये लोकसभा में इस अनुदान की मांग प्रस्तुत करने से पहले उसे संसद की लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिये।
- प्रत्यानुदान (Vote of Credit): जब किसी सेवा के अनिश्चित स्वरूप के कारण उसकी मांग को बजट में उस प्रकार नहीं रखा जा सकता जिस प्रकार से सामान्यतया बजट में अन्य मांगों को रखा जाता है, तो ऐसी मांगों की पूर्ति के लिये प्रत्यानुदान प्रदान किया जाता है।
  - अत: यह लोकसभा द्वारा कार्यपालिका को दिये गए ब्लैंक चेक के समान है।
- अपवादानुदान (Exceptional Grant): यह एक विशेष उद्देश्य के लिये प्रदान किया जाता है तथा यह किसी भी वित्तीय वर्ष की वर्तमान सेवा का हिस्सा नहीं होता है।
- सांकेतिक अनुदान (Token Grant): यह अनुदान तब जारी किया जाता है जब पहले से प्रस्तावित किसी सेवा के अतिरिक्त नई सेवा के लिये धन की आवश्यकता होती है।
  - इस सांकेतिक राशि की मांग (1 रुपए) को लोकसभा के समक्ष वोट के लिये प्रस्तुत किया जाता है और यदि लोकसभा इस मांग को स्वीकार करती है तो राशि उपलब्ध करा दी जाती है।
  - धन के पुनर्विनियोजन (Reappropriation) में धन का हस्तांतरण शामिल होता है तथा मांग किसी अतिरिक्त व्यय से संबंधित नहीं होती है।

संबंधित संवैधानिक प्रावधान:

- अनुच्छेद 115 अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान से संबंधित है।
- भारतीय संविधान का अनुच्छेद-116 लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान के निर्धारण से संबंधित है।
- अनुपूरक, अतिरिक्त, अधिक और असाधारण अनुदान तथा वोट ऑफ क्रेडिट को उसी प्रक्रिया द्वारा विनियमित किया जाता है जैसे बजट (Budget) को किया जाता है।

अनुदान की अनुपूरक मांग

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सरकार ने लोकसभा में अनुदान की अनुपूरक मांगों का तीसरा बैच पेश किया है।

अनुदान की अनुपूरक मांग क्या है?

- इस अनुदान की आवश्यकता तब होती है जब संसद द्वारा वर्तमान वित्त वर्ष के लिये किसी विशेष सेवा हेतु विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) के माध्यम से अधिकृत राशि अपर्याप्त पाई जाती है।
- यह अनुदान वित्तीय वर्ष की समाप्ति से पहले संसद द्वारा प्रस्तुत और पारित किया जाता है।

अनुदान के अन्य प्रकार:

- अतिरिक्त अनुदान (Additional Grant): यह अनुदान उस समय प्रदान किया जाता है जब सरकार को उस वर्ष के वित्तीय विवरण में परिकल्पित/अनुध्यात सेवाओं के अतिरिक्त किसी नई सेवा के लिये धन की आवश्यकता होती है।
- अधिक अनुदान (Excess Grant): यह तब प्रदान किया जाता है जब किसी सेवा पर उस वित्तीय वर्ष में निर्धारित (उस वर्ष में संबंधित सेवा के लिये) या अनुदान किये गए धन से अधिक व्यय हो जाता है। इस पर लोकसभा द्वारा वित्तीय वर्ष खत्म होने के बाद मतदान किया जाता है। मतदान के लिये लोकसभा में इस अनुदान की मांग प्रस्तुत करने से पहले उसे संसद की लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिये।
- प्रत्यानुदान (Vote of Credit): जब किसी सेवा के अनिश्चित स्वरूप के कारण उसकी मांग को बजट में उस प्रकार नहीं रखा जा सकता जिस प्रकार से सामान्यतया बजट में अन्य मांगों को रखा जाता है, तो ऐसी मांगों की पूर्ति के लिये प्रत्यानुदान प्रदान किया जाता है।
  - अत: यह लोकसभा द्वारा कार्यपालिका को दिये गए ब्लैंक चेक के समान है।
- अपवादानुदान (Exceptional Grant): यह एक विशेष उद्देश्य के लिये प्रदान किया जाता है तथा यह किसी भी वित्तीय वर्ष की वर्तमान सेवा का हिस्सा नहीं होता है।
- सांकेतिक अनुदान (Token Grant): यह अनुदान तब जारी किया जाता है जब पहले से प्रस्तावित किसी सेवा के अतिरिक्त नई सेवा के लिये धन की आवश्यकता होती है।
  - इस सांकेतिक राशि की मांग (1 रुपए) को लोकसभा के समक्ष वोट के लिये प्रस्तुत किया जाता है और यदि लोकसभा इस मांग को स्वीकार करती है तो राशि उपलब्ध करा दी जाती है।
  - धन के पुनर्विनियोजन (Reappropriation) में धन का हस्तांतरण शामिल होता है तथा मांग किसी अतिरिक्त व्यय से संबंधित नहीं होती है।

संबंधित संवैधानिक प्रावधान:

- अनुच्छेद 115 अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान से संबंधित है।
- भारतीय संविधान का अनुच्छेद-116 लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान के निर्धारण से संबंधित है।
- अनुपूरक, अतिरिक्त, अधिक और असाधारण अनुदान तथा वोट ऑफ क्रेडिट को उसी प्रक्रिया द्वारा विनियमित किया जाता है जैसे बजट (Budget) को किया जाता है।

विनियोग विधेयक

चर्चा में क्यों?

हाल ही में लोकसभा ने विनियोग विधेयक को मंज़ूरी दी है, इससे केंद्र सरकार भारत की संचित निधि से धनराशि की निकासी कर सकेगी।

प्रमुख बिंदु:

- विनियोग विधेयक सरकार को किसी वित्तीय वर्ष के दौरान व्यय की पूर्ति के लिये भारत की संचित निधि से धनराशि निकालने की शक्ति देता है।
  - संविधान के अनुच्छेद-114 के अनुसार, सरकार संसद से अनुमोदन प्राप्त करने के बाद ही संचित निधि से धन निकाल सकती है।
  - निकाली गई धनराशि का उपयोग वित्तीय वर्ष के दौरान खर्च को पूरा करने के लिये किया जाता है।
- अनुसरित प्रक्रिया:
  - विनियोग विधेयक लोकसभा में बजट प्रस्तावों और अनुदानों की मांगों पर चर्चा के बाद पेश किया जाता है।

- संसदीय वोटिंग में विनियोग विधेयक के पारित न होने से सरकार को इस्तीफा देना होगा तथा आम चुनाव कराना होगा।
- एक बार जब यह लोकसभा द्वारा पारित हो जाता है, तो इसे राज्यसभा में भेज दिया जाता है।
  - राज्यसभा की शक्तियाँ:
  - राज्यसभा को इस विधेयक में संशोधन की सिफारिश करने की शक्ति प्राप्त है। हालाँकि राज्यसभा की सिफारिशों को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा का विशेषाधिकार है।
- राष्ट्रपति से विधेयक को स्वीकृति मिलने के बाद यह विनियोग अधिनियम बन जाता है।
  - विनियोग विधेयक की अनूठी विशेषता इसका स्वत: निरसन है, जिससे यह अधिनियम अपने वैधानिक उद्देश्य को पूरा करने के बाद अपने आप निरस्त हो जाता है।
- सरकार विनियोग विधेयक के अधिनियमित होने तक भारत की संचित निधि से धनराशि नहीं निकाल सकती है। हालाँकि इसमें समय लगता है और सरकार को अपनी सामान्य गतिविधियों के संचालन के लिये धन की आवश्यकता होती है। अत: अपने तत्काल व्ययों को पूरा करने के लिये संविधान ने लोकसभा को वित्तीय वर्ष के एक भाग के लिये अग्रिम रूप से अनुदान प्रदान करने हेतु अधिकृत किया है। इस प्रावधान को 'लेखानुदान' के रूप में जाना जाता है।

लेखानुदान:

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 116 के अनुसार, लेखानुदान केंद्र सरकार के लिये अग्रिम अनुदान के रूप में है, इसे भारत की संचित निधि से अल्पकालिक व्यय की आवश्यकता को पूरा करने के लिये प्रदान किया जाता है और आमतौर पर नए वित्तीय वर्ष के कुछ शुरुआती महीनों के लिये जारी किया जाता है।
- आवश्यकता:
  - एक चुनावी वर्ष के दौरान सरकार या तो अंतरिम बजट 'या 'लेखानुदान' को ही जारी करती है क्योंकि चुनाव के बाद नई सरकार पुरानी सरकार की नीतियों को बदल सकती है।
- संशोधन:
  - किसी विनियोग विधेयक की राशि में परिवर्तन करने या अनुदान के लक्ष्य को बदलने अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि में परिवर्तन करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन, संसद के सदन में प्रख्यापित नहीं किया जा सकता है और ऐसे संशोधन की स्वीकार्यता के संबंध में लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता है।
- विनियोग विधेयक बनाम वित्त विधेयक:
  - वित्त विधेयक में सरकार के व्यय के वित्तपोषण संबंधी प्रावधान हैं, जबकि एक विनियोग विधेयक में धन निकासी की मात्रा और उद्देश्य को निर्दिष्ट किया गया है।
  - विनियोग और वित्त विधेयक दोनों को धन विधेयक के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जिसे राज्यसभा की स्पष्ट सहमति की आवश्यकता नहीं होती है। राज्यसभा इस पर केवल चर्चा करके इसे लौटा देती है।
  - धन विधेयक:
    - एक विधेयक को उस स्थिति में धन विधेयक कहा जाता है यदि इसमें केवल कराधान, सरकार द्वारा धन उधार लेने, भारत की संचित निधि से धनराशि प्राप्त करने से संबंधित प्रावधान हैं।
    - वे विधेयक जिनमें केवल ऐसे प्रावधान हैं जो उपर्युक्त मामलों से संबंधित हैं, उन्हें ही धन विधेयक माना जाएगा।

भारत की संचित निधि:

- इसकी स्थापना भारत के संविधान के अनुच्छेद 266 (1) के तहत की गई थी।
- इसमें समाहित हैं:
  - करों के माध्यम से केंद्र को प्राप्त सभी राजस्व (आयकर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क और अन्य प्राप्तियाँ) तथा सभी गैर-कर राजस्व।
  - सार्वजनिक अधिसूचना, ट्रेज़री बिल (आंतरिक ऋण) और विदेशी सरकारों तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों (बाहरी ऋण) के माध्यम से केंद्र द्वारा लिये गए सभी ऋण।
- सभी सरकारी व्यय इसी निधि से पूरे किये जाते हैं (असाधारण मदों को छोड़कर जो लोक लेखा निधि या सार्वजनिक निधि से संबंधित हैं) और संसद के प्राधिकरण के बिना निधि से कोई राशि नहीं निकाली जा सकती।
- भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (CAG) इस निधि का लेखा परीक्षण करते हैं।

संसद में बजट की विभिन्न अवस्थाएँ:

- बजट की प्रस्तुति।
- आम चर्चा।
- विभागीय समितियों द्वारा जाँच।
- अनुदान की मांगों पर मतदान।
- विनियोग विधेयक पारित करना।
- वित्त विधेयक पारित करना।

न्यायतंत्र आभासी न्यायालय

चर्चा में क्यों?

हाल ही में भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) एन.वी. रमना ने आभासी सुनवाई के लिये सर्वोच्च न्यायालय में नए लगाए गए ओपन न्यायालय सॉफ्टवेयर के प्रति असंतोष व्यक्त किया है।

- यह असंतोष आभासी सुनवाई के दौरान आवाज़ो की प्रतिध्वनि की समस्या से उत्पन्न हुआ।

प्रमुख बिंदु

- आभासी न्यायालय के बारे में:
  - आभासी न्यायालय या ई-न्यायालय एक अवधारणा है जिसका उद्देश्य न्यायालय में वादियों या वकीलों की उपस्थिति को समाप्त करना और मामले का ऑनलाइन निर्णय करना है।
    - इसके लिये एक ऑनलाइन वातावरण और एक सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) सक्षम बुनियादी ढाँचे की आवश्यकता होती है।
  - वर्ष 2020 में कोरोनावायरस महामारी के मद्देनज़र, सर्वोच्च न्यायालय (SC) ने अनुच्छेद 142 के तहत अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हुए देश भर के सभी न्यायालयों को न्यायिक कार्यवाही के लिये वीडियो-कॉन्फ्रेंसिंग का व्यापक रूप से उपयोग करने का निर्देश दिया।
  - इससे पहले न्यायिक प्रणाली में CJI द्वारा एक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) आधारित पोर्टल 'SUPACE' लॉन्च किया गया था, जिसका उद्देश्य न्यायाधीशों को कानूनी अनुसंधान में सहायता करना था।
  - साथ ही SC ने न्यायालय की कार्यवाही की लाइव-स्ट्रीमिंग और रिकॉर्डिंग के लिये ड्राफ्ट मॉडल नियम जारी किये हैं।

ई-न्यायालय परियोजना

- ई-समिति द्वारा प्रस्तुत "भारतीय न्यायपालिका में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के कार्यान्वयन के लिये राष्ट्रीय नीति एवं कार्ययोजना-2005" के आधार पर इसकी अवधारणा की गई थी। इसमें भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भारतीय न्यायपालिका को ICT सक्षमता युक्त करने की परिकल्पना की गई थी ।
- ई-न्यायालय मिशन मोड प्रोजेक्ट, एक अखिल भारतीय परियोजना है, जिसकी निगरानी और वित्तपोषण न्याय विभाग, कानून तथा न्याय मंत्रालय द्वारा देश भर के ज़िला न्यायालयों के लिये किया जाता है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये कॉलेजियम प्रणाली

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के कॉलेजियम ने न्यायमूर्ति मुनीश्वर नाथ भंडारी को मद्रास उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करने की सिफारिश की है।

कॉलेजियम प्रणाली और इसका विकास:

- यह न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानांतरण की प्रणाली है, जो संसद के किसी अधिनियम या संविधान के प्रावधान द्वारा स्थापित न होकर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के माध्यम से विकसित हुई है।
- कॉलेजियम प्रणाली का विकास:
  - प्रथम न्यायाधीश मामला (1981):
    - इसने यह निर्धारित किया कि न्यायिक नियुक्तियों और तबादलों पर भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) के सुझाव की "प्रधानता" को "ठोस कारणों" से अस्वीकार किया जा सकता है।
    - इस निर्णय ने अगले 12 वर्षों के लिये न्यायिक नियुक्तियों में न्यायपालिका पर कार्यपालिका की प्रधानता स्थापित कर दी है।
  - दूसरा न्यायाधीश मामला (1993):
    - सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट करते हुए कॉलेजियम प्रणाली की शुरुआत की कि "परामर्श" का अर्थ वास्तव में "सहमति" है।
    - इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि यह CJI की व्यक्तिगत राय नहीं होगी, बल्कि सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों के परामर्श से ली गई एक संस्थागत राय होगी।
  - तीसरा न्यायाधीश मामला (1998):
    - राष्ट्रपति द्वारा जारी एक प्रेज़िडेंशियल रेफरेंस (Presidential Reference) के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने पाँच सदस्यीय निकाय के रूप में कॉलेजियम का विस्तार किया, जिसमें CJI और उनके चार वरिष्ठतम सहयोगी शामिल होंगे।

कॉलेजियम प्रणाली का प्रमुख:

- सर्वोच्च न्यायालय के कॉलेजियम की अध्यक्षता CJI द्वारा की जाती है और इसमें सर्वोच्च न्यायालय के चार अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीश शामिल होते हैं।
- एक उच्च न्यायालय के कॉलेजियम का नेतृत्व उसके मुख्य न्यायाधीश और उस न्यायालय के चार अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीश करते हैं।

- उच्च न्यायालय के कॉलेजियम द्वारा नियुक्ति के लिये अनुशंसित नाम CJI और सर्वोच्च न्यायालय के कॉलेजियम के अनुमोदन के बाद ही सरकार तक पहुँचते हैं।
- उच्च न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति कॉलेजियम प्रणाली के माध्यम से ही की जाती है और इस प्रक्रिया में सरकार की भूमिका कॉलेजियम द्वारा नाम तय किये जाने के बाद की प्रक्रिया में ही होती है।

विभिन्न न्यायिक नियुक्तियों के लिये निर्धारित प्रक्रिया:

- भारत का मुख्य न्यायाधीश (CJI):
  - CJI और सर्वोच्च न्यायालय के अन्य जजों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
  - अगले CJI के संदर्भ में निवर्तमान CJI अपने उत्तराधिकारी के नाम की सिफारिश करता है।
  - हालाँकि वर्ष 1970 के दशक के अतिलंघन विवाद के बाद से व्यावहारिक रूप से इसके लिये वरिष्ठता के आधार का पालन किया जाता है।
- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश ::
  - सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के लिये नामों के चयन का प्रस्ताव CJI द्वारा शुरू किया जाता है।
  - CJI कॉलेजियम के बाकी सदस्यों के साथ-साथ उस उच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश से भी परामर्श करता है, जिससे न्यायाधीश पद के लिये अनुशंसित व्यक्ति संबंधित होता है।
  - निर्धारित प्रक्रिया के तहत परामर्शदाताओं को लिखित रूप में अपनी राय दर्ज करानी होती है और इसे फाइल का हिस्सा बनाया जाना चाहिये।
  - इसके पश्चात् कॉलेजियम केंद्रीय कानून मंत्री को अपनी सिफारिश भेजता है, जिसके माध्यम से इसे राष्ट्रपति को सलाह देने हेतु प्रधानमंत्री को भेजा जाता है।
- उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश के लिये:
  - उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति इस आधार पर की जाती है कि मुख्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने वाला व्यक्ति संबंधित राज्य से न होकर किसी अन्य राज्य से होगा।
  - यद्यपि उनके चयन का निर्णय कॉलेजियम द्वारा लिया जाता है।
  - उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सिफारिश CJI और दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों वाले एक कॉलेजियम द्वारा की जाती है।
  - हालाँकि इसके लिये प्रस्ताव को संबंधित उच्च न्यायालय के निवर्तमान मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श के बाद पेश किया जाता है।
  - यह सिफारिश मुख्यमंत्री को भेजी जाती है, जो इस प्रस्ताव को केंद्रीय कानून मंत्री को भेजने के लिये राज्यपाल को सलाह देता है।
- कॉलेजियम प्रणाली की आलोचना:
  - स्पष्टता एवं पारदर्शिता की कमी।
  - भाई-भतीजावाद जैसी विसंगतियों की संभावना।
  - सार्वजनिक विवादों में उलझना।
  - कई प्रतिभाशाली कनिष्ठ न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं की अनदेखी।
- नियुक्ति प्रणाली में सुधार हेतु किये गए प्रयास:
  - इसे 'राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग' (99वें संशोधन अधिनियम, 2014 के माध्यम से) द्वारा प्रतिस्थापित करने के प्रयास में वर्ष 2015 में न्यायालय ने इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये खतरा है।

पदोन्नति में आरक्षण हेतु मापदंड निर्धारण से सर्वोच्च न्यायालय का इनकार

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय (SC) ने सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिये पदोन्नति में आरक्षण देने हेतु प्रतिनिधित्व की अपर्याप्तता का निर्धारण करने के लिये मापदंड तय करने से इनकार कर दिया।

न्यायालय का यह फैसला देश भर में दाखिल उन याचिकाओं पर दिया गया है, जिनमें पदोन्नति में आरक्षण देने के तौर-तरीकों पर और स्पष्टता की मांग की गई थी।

प्रमुख बिंदु

- पृष्ठभूमि:
  - पदोन्नति में आरक्षण:
    - 1950 के दशक से केंद्र और राज्य सरकारें अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति समुदायों के पक्ष में पदोन्नति में सीटें आरक्षित करने की नीति का पालन कर रही हैं क्योंकि सार्वजनिक सेवाओं में निर्णय निर्माण प्रक्रिया के स्तर पर उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।
  - इंदिरा साहनी वाद 1992:
    - पदोन्नति में आरक्षण की इस नीति को इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ 1992 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असंवैधानिक और शून्य माना गया क्योकि सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती के समय केवल प्रवेश के स्तर पर अनुच्छेद 16 (4) के तहत राज्य को पिछड़े वर्गों के नागरिकों के पक्ष में आरक्षण की शक्ति प्रदान की गई है।

- 77वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 16(4A) को शामिल किया गया।

- एम नागराज वाद 2006:
  - इस मामले में पदोन्नति हेतु अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के आरक्षण में क्रीमी लेयर की अवधारणा को लागू करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने इंद्रा साहनी मामले (1992) में अपने पूर्व निर्णय को पलट दिया, जिसमें उसने एससी/एसटी (जो ओबीसी पर लागू था) को क्रीमी लेयर की अवधारणा में बाहर कर दिया था।
  - SC ने संवैधानिक संशोधनों जिसके द्वारा अनुच्छेद 16 (4A) और 16 (4B) को जोड़ा गया था यह कहते हुए बरकरार रखा कि वे अनुच्छेद 16 (4) से संबंधित हैं तथा ये अनुच्छेद की मूल संरचना को परिवर्तित नहीं करते हैं।
  - इसने सार्वजनिक रोज़गार में एससी और एसटी समुदायों के लोगों की संख्या को बढ़ाने हेतु तीन शर्तें भी रखीं:
  - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदाय को सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़ा होना चाहिये।
  - सार्वजनिक रोज़गार में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व का अभाव हो।
  - आरक्षण नीति प्रशासन में समग्र दक्षता को प्रभावित नहीं करेगी।
  - न्यायालय ने कहा कि सरकार अपने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के कर्मचारियों हेतु पदोन्नति में कोटा तब तक लागू नहीं कर सकती जब तक कि यह साबित नहीं हो जाता कि विशेष समुदाय पिछड़ा हुआ, अपर्याप्त प्रतिनिधित्व और पदोन्नति में आरक्षण प्रदान करने से लोक प्रशासन की समग्र दक्षता प्रभावित नहीं होगी।
  - सरकार की राय मात्रात्मक आँकड़ों पर आधारित होनी चाहिये।

- जरनैल सिंह वाद 2018:
  - जरनैल सिंह मामले (2018) में सर्वोच्च न्यायालय ने नागराज फैसले को एक उच्च पीठ को संदर्भित करने से इनकार कर दिया, परंतु बाद में यह कहकर अपने निर्णय को बदल दिया कि राज्यों को SC/ST समुदायों के पिछड़ेपन के मात्रात्मक डेटा प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है।
  - न्यायालय ने सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (SC/ST) के सदस्यों के लिये "परिणामी वरिष्ठता के साथ त्वरित पदोन्नति" प्रदान करने के सरकार के प्रयासों को एक बड़ा प्रोत्साहन दिया था।

आरक्षण में पदोन्नति हेतु संवैधानिक प्रावधान:

- संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अनुसार, राज्य सरकारें अपने नागरिकों के उन सभी पिछड़े वर्गों के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण हेतु प्रावधान कर सकती हैं, जिनका राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।
- अनुच्छेद 16(4A) के अनुसार, राज्य सरकारें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के पक्ष में पदोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिये कोई भी प्रावधान कर सकती हैं यदि राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।
- अनुच्छेद 16 (4B): इसे 81वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 2000 द्वारा जोड़ा गया, जिसमें एक विशेष वर्ष के रिक्त SC/ST कोटे को अगले वर्ष के लिये स्थानांतरित कर दिया गया।
- अनुच्छेद 335: के अनुसार, सेवाओं और पदों को लेकर SC और ST के दावों पर विचार करने हेतु विशेष उपायों को अपनाने की आवश्यकता है, ताकि उन्हें बराबरी के स्तर पर लाया जा सके।
- 82वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 2000 ने अनुच्छेद 335 में एक शर्त सम्मिलित की जो कि राज्य को किसी भी परीक्षा में अर्हक अंक में छूट प्रदान करने हेतु अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के पक्ष में कोई प्रावधान करने में सक्षम बनाता है।

विधायकों का निलंबन

चर्चा में क्यों?

हाल ही में महाराष्ट्र विधानसभा के 12 विधायक अपने एक वर्ष के निलंबन के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय गए हैं।

- सर्वोच्च न्यायालय ने पाया है कि विधायको का पूरे एक वर्ष के लिये निलंबन प्रथम दृष्टया असंवैधानिक है और इन निर्वाचन क्षेत्रों में एक संवैधानिक शून्य की स्थिति पैदा करेगा।

प्रमुख बिंदु:

- विधायकों के निलंबन के बारे में:
  - विधायकों को ओबीसी के डेटा के खुलासे के संबंध में विधानसभा में किये गए दुर्व्यवहार के लिये निलंबित किया गया है।
  - निलंबन की चुनौती मुख्य रूप से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के खंडन और निर्धारित प्रक्रिया के उल्लंघन के आधार पर निर्भर करती है।
    - 12 विधायकों ने कहा है कि उन्हें अपना मामला पेश करने का मौका नहीं दिया गया और निलंबन ने संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत कानून के समक्ष समानता के उनके मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया है।

- महाराष्ट्र विधानसभा का नियम 53: इसमें कहा गया है कि "अध्यक्ष किसी भी उस सदस्य को विधानसभा से तुरंत हटने के लिये निर्देश दे सकता है जो उसके फैसले को मानने से इनकार करता है या जिसका आचरण उसकी राय में अव्यवस्था उत्पन्न करता है"।
  - सदस्य को "दिन की शेष बैठक के दौरान खुद का अनुपस्थित" रहना होगा।
  - यदि किसी सदस्य को उसी सत्र में दूसरी बार वापस लेने का आदेश दिया जाता है तो अध्यक्ष सदस्य को अनुपस्थित रहने का निर्देश दे सकता है, जो "किसी भी अवधि के लिये सत्र के शेष दिनों से अधिक नहीं होना चाहिये"।

- महाराष्ट्र विधानसभा द्वारा तर्क:
  - अनुच्छेद 212: सदन ने अनुच्छेद 212 के तहत अपनी विधायी क्षमता के तहत कार्य किया तथा न्यायालय को विधायिका की कार्यवाही की जाँच करने का अधिकार नहीं है।
    - अनुच्छेद 212 (1) के अनुसार, "किसी राज्य के विधानमंडल प्रक्रिया की किसी कथित अनियमितता के आधार पर किसी राज्य के विधानमंडल में किसी भी कार्यवाही की वैधता पर सवाल नहीं उठाया जाएगा।
  - अनुच्छेद 194: राज्य ने सदन की शक्तियों और विशेषाधिकारों पर अनुच्छेद 194 का भी उल्लेख किया और तर्क दिया है कि इन विशेषाधिकारों का उल्लंघन करने वाले किसी भी सदस्य को सदन की अंतर्निहित शक्तियों के माध्यम से निलंबित किया जा सकता है।
    - राज्य द्वारा इस बात से भी इनकार किया गया है कि किसी सदस्य को निलंबित करने की शक्ति का प्रयोग केवल विधानसभा के नियम 53 के माध्यम से किया जा सकता है।

- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गए तर्क:
  - संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन: विधानसभा में पूरे एक साल तक निलंबित विधायकों के निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व न होने से संविधान का मूल ढाँचा प्रभावित होगा।
  - संवैधानिक आवश्यकता: पीठ ने संविधान के अनुच्छेद 190 (4) का उल्लेख किया, जिसमें कहा गया है, "यदि किसी राज्य के विधानमंडल के सदन का कोई सदस्य साठ दिनों की अवधि तक सदन की अनुमति के बिना उसकी सभी बैठकों से अनुपस्थित रहता है, तो सदन उसकी सीट को रिक्त घोषित कर सकता है।"
  - वैधानिक आवश्यकता: जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 151 (ए) के तहत, "किसी भी रिक्ति को भरने के लिये वहाँ एक उप-चुनाव, रिक्ति होने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर आयोजित किया जाएगा"।
    - इसका मतलब है कि इस धारा के तहत निर्दिष्ट अपवादों को छोड़कर, कोई भी निर्वाचन क्षेत्र छह महीने से अधिक समय तक प्रतिनिधि के बिना नहीं रह सकता है।
  - पूरे निर्वाचन क्षेत्र को दंडित करना: सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि एक वर्ष का निलंबन प्रथम दृष्टया असंवैधानिक था क्योंकि यह छह महीने की सीमा से आगे निकल गया था और यहाँ "सदस्य को नहीं बल्कि पूरे निर्वाचन क्षेत्र को दंडित किया गया।
  - सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप का प्रश्न: उच्चतम न्यायालय से इस प्रश्न पर शासन करने की अपेक्षा की जाती है कि क्या न्यायपालिका सदन की कार्यवाही में हस्तक्षेप कर सकती है।
    - हालाँकि संवैधानिक विशेषज्ञों का कहना है कि न्यायालय ने पिछले फैसलों में स्पष्ट किया है कि सदन द्वारा किये गए असंवैधानिक कृत्य के मामले में न्यायपालिका हस्तक्षेप कर सकती है।

संसद सदस्य के निलंबन के प्रावधान:

- लोकसभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के अंतर्गत नियम 378 के अनुसार, लोकसभा अध्यक्ष द्वारा सदन में व्यवस्था बनाई रखी जाएगी तथा उसे अपने निर्णयों को प्रवर्तित करने के लिये सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी।
- नियम 373 के अनुसार, यदि लोकसभा अध्यक्ष की राय में किसी सदस्य का व्यवहार अव्यवस्थापूर्ण है तो अध्यक्ष उस सदस्य को लोकसभा से बाहर चले जाने का निर्देश दे सकता है और जिस सदस्य को इस तरह का आदेश दिया जाएगा, वह तुरंत लोकसभा से बाहर चला जाएगा तथा उस दिन की बची हुई बैठक के दौरान वह सदन से बाहर रहेगा।
- नियम 374 (1), (2) तथा (3) के अनुसार, यदि लोकसभा अध्यक्ष की राय में किसी सदस्य ने अध्यक्ष के प्राधिकारों की उपेक्षा की है या वह जान बूझकर लोकसभा के कार्यों में बाधा डाल रहा है तो लोकसभा अध्यक्ष उस सदस्य का नाम लेकर उसे अवशिष्ट सत्र से निलंबित कर सकता है तथा निलंबित सदस्य तुरंत लोकसभा से बाहर चला जाएगा।
- नियम 374 (क) (1) के अनुसार, नियम 373 और 374 में अंतर्विष्ट किसी प्रावधान के बावजूद यदि कोई सदस्य लोकसभा अध्यक्ष के आसन के निकट आकर अथवा सभा मंट नारे लगाकर या अन्य प्रकार से लोकसभा की कार्यवाही में बाधा डालकर जान-बूझकर सभा के नियमों का उल्लंघन करते हुए घोर अव्यवस्था उत्पन्न करता है तो लोकसभा अध्यक्ष द्वारा उसका नाम लिये जाने पर वह लोकसभा की पाँच बैठकों या सत्र की शेष अवधि के लिये (जो भी कम हो) स्वत: निलंबित माना जाएगा।

भारत में न्यायालयों की भाषा

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में गुजरात उच्च न्यायालय में न्यायालय की अवमानना (Contempt of Court) का सामना कर रहे एक पत्रकार को न्यायालय द्वारा यह कहते हुए केवल अंग्रेज़ी में बोलने के लिये कहा गया कि यह उच्च न्यायपालिका की भाषा है।

प्रमुख बिंदु

- पृष्ठभूमि:
  - भारत में न्यायालयों में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा ने मुगल काल के दौरान उर्दू से फारसी और फारसी लिपियों में बदलाव के साथ सदियों से एक संक्रमण देखा है जो ब्रिटिश शासन के दौरान भी अधीनस्थ न्यायालयों में जारी रहा।
  - अंग्रेज़ों ने भारत में राजभाषा के रूप में अंग्रेज़ी के साथ कानून की एक संहिताबद्ध प्रणाली की शुरुआत की।
  - स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 में प्रावधान है कि संघ की आधिकारिक भाषा देवनागरी लिपि में हिंदी होगी।
  - हालाँकि यह अनिवार्य है कि भारत के संविधान के प्रारंभ से 15 वर्षों तक संघ के सभी आधिकारिक उद्देश्यों हेतु अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग जारी रहेगा।
    - यह आगे प्रावधान करता है कि राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान अंग्रेज़ी भाषा के अलावा संघ के किसी भी आधिकारिक उद्देश्य के लिये हिंदी भाषा के उपयोग को अधिकृत कर सकता है।
- संबंधित प्रावधान:
  - अनुच्छेद 348 (1) (A), जब तक संसद कानून द्वारा अन्यथा प्रदान नहीं करती है, सर्वोच्च न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय के समक्ष सभी कार्यवाही अंग्रेज़ी में आयोजित की जाएगी।
  - अनुच्छेद 348 (2) यह भी प्रावधान करता है कि अनुच्छेद 348 (1) के प्रावधानों के बावजूद किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उच्च न्यायालय की कार्यवाही में हिंदी या किसी भी आधिकारिक उद्देश्य के लिये इस्तेमाल की जाने वाली किसी अन्य भाषा के उपयोग को अधिकृत कर सकता है।
    - उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश राज्यों ने पहले ही अपने-अपने उच्च न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही में हिंदी के उपयोग को अधिकृत कर दिया है और तमिलनाडु भी अपने उच्च न्यायालय के समक्ष तमिल भाषा के उपयोग को अधिकृत करने के लिये उसी दिशा में काम कर रहा है
  - एक अन्य प्रावधान में यह कहा गया है कि इस खंड का कोई भी भाग उच्च न्यायालय द्वारा किये गए किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश पर लागू नहीं होगा।
  - इसलिये संविधान इस चेतावनी के साथ अंग्रेज़ी को सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की प्राथमिक भाषा के रूप में मान्यता देता है कि भले ही उच्च न्यायालयों की कार्यवाही में किसी अन्य भाषा का उपयोग किया जाए लेकिन उच्च न्यायालयों के निर्णय अंग्रेज़ी में दिये जाने चाहये।
- राजभाषा अधिनियम 1963:
  - राजभाषा अधिनियम- 1963 राज्यपाल को यह अधिकार देता है कि वह राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से उच्च न्यायलय द्वारा दिये गए निर्णयों, पारित आदेशों में हिंदी अथवा राज्य की किसी अन्य भाषा के प्रयोग की अनुमति दे सकता है, परंतु इसके साथ ही इसका अंग्रेज़ी अनुवाद भी संलग्न करना होगा।
  - यह प्रावधान करता है कि जहाँ कोई निर्णय/आदेश ऐसी किसी भी भाषा में पारित किया जाता है, तो उसके साथ उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद होना चाहिये।
    - यदि इसे संवैधानिक प्रावधानों के साथ पढ़ें तो यह स्पष्ट है कि इस अधिनियम द्वारा भी अंग्रेज़ी को प्रधानता दी गई है।
  - राजभाषा अधिनियम में सर्वोच्च न्यायालय का कोई उल्लेख नहीं है,जहाँ अंग्रेज़ी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिसमें कार्यवाही की जाती है।

नोट:

- वादी को अदालत की कार्यवाही को समझने और उसमें भाग लेने का मौलिक अधिकार है क्योंकि यह यकीनन अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 21 के तहत अधिकारों का एक बंडल प्रदान करता है।
- वादी को मज़िस्ट्रेट के सामने उस भाषा में बोलने का अधिकार है जिसे वह समझता/समझती है। इसी तरह संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत "न्याय के अधिकार" को भी मान्यता दी गई है।
- इसलिये संविधान ने वादी को न्याय का अधिकार प्रदान किया है जिसमें आगे यह भी शामिल है कि उसे पूरी कार्यवाही तथा दिये गए निर्णय को समझने का अधिकार होगा।
- अधीनस्थ न्यायालयों की भाषा:
  - उच्च न्यायालयों के अधीनस्थ सभी न्यायालयों की भाषा आमतौर पर वही रहती है जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किये जाने तक सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के प्रारंभ पर भाषा के रूप में होती है।
  - अधीनस्थ न्यायालयों में भाषा के प्रयोग के संबंध में प्रावधान में यह शामिल है कि नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 137 के तहत ज़िला न्यायालयों की भाषा अधिनियम की भाषा के समान होगी।

- राज्य सरकार के पास न्यायालय की कार्यवाही के विकल्प के रूप में किसी भी क्षेत्रीय भाषा को घोषित करने की शक्ति है।
  - हालाँकि मजिस्ट्रेट द्वारा अंग्रेज़ी में निर्णय, आदेश और डिक्री पारित की जा सकती है।
  - साक्ष्यों को दर्ज करने का कार्य राज्य की प्रचलित भाषा में किया जाएगा।
  - अभिवक्ता के अंग्रेज़ी से अनभिज्ञ होने की स्थिति में उसके अनुरोध पर अदालत की भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाएगा और इस तरह की लागत अदालत द्वारा वहन की जाएगी।
- दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 272 में कहा गया है कि राज्य सरकार उच्च न्यायालयों के अलावा अन्य सभी न्यायालयों की भाषा का निर्धारण करेगी। मोटे तौर पर इसका तात्पर्य यह है कि ज़िला अदालतों में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा राज्य सरकार के निर्देशानुसार क्षेत्रीय भाषा होगी।

एससी/एसटी एक्ट: सर्वोच्च न्यायालय

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसले का अवलोकन करते हुए पाया कि शीर्ष अदालत और उच्च न्यायालयों के पास एससी/एसटी अधिनियम सहित विभिन्न 'विशेष क़ानूनों' के तहत दायर आपराधिक मामलों को रद्द करने की शक्ति है।

- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय के पास संविधान के अनुच्छेद 142 या उच्च न्यायालय के आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियाँ हैं।

प्रमुख बिंदु

- 'विशेष कानून' के तहत मामलों को रद्द करने की स्थिति:
  - जहाँ न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि विचाराधीन अपराध, भले ही एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत आता है, प्राथमिक रूप से निजी या दीवानी प्रकृति का है, या जहाँ कथित अपराध पीड़ित की जाति के आधार पर नहीं किया गया है, या कानूनी कार्यवाही को जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा, न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने के लिये अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।
  - जब दोनों पक्षों के बीच समझौता/निपटान के आधार पर रद्द करने की प्रार्थना पर विचार करते समय, यदि न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि अधिनियम के अंतर्निहित उद्देश्य का उल्लंघन नहीं किया जाएगा या कम नहीं किया जाएगा, भले ही विवादित अपराध के लिये दंडित न किया जाए।
- अनुच्छेद 142:
  - परिचय: यह सर्वोच्च न्यायालय को विवेकाधीन शक्ति प्रदान करता है क्योंकि इसमें कहा गया है कि सर्वोच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए ऐसा आदेश पारित कर सकता है या ऐसा आदेश दे सकता है जो उसके समक्ष लंबित किसी भी मामले या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिये आवश्यक हो।
  - रचनात्मक अनुप्रयोग: अनुच्छेद 142 के विकास के प्रारंभिक वर्षों में आम जनता और वकीलों दोनों ने समाज के विभिन्न वंचित वर्गों को पूर्ण न्याय दिलाने या पर्यावरण की रक्षा करने के प्रयासों के लिये सर्वोच्च न्यायालय की सराहना की।
    - सर्वोच्च न्यायालय ने यूनियन कार्बाइड मामले को भी अनुच्छेद 142 से संबंधित बताया था। यह मामला भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों से जुड़ा हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं को संसद या राज्यों की विधानसभाओं द्वारा बनाए गए कानूनों से ऊपर रखते हुए कहा कि पूर्ण न्याय करने के लिये यह संसद द्वारा बनाए गए कानूनों को भी समाप्त कर सकता है।
    - हालाँकि सर्वोच्च न्यायालय 'बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ' मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा कि अनुच्छेद 142 का उपयोग मौजूदा कानून को प्रतिस्थापित करने के लिये नहीं, बल्कि एक विकल्प के तौर पर किया जा सकता है।
  - न्यायिक अतिरेक के मामले: हाल के वर्षों में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे कई निर्णय दिये हैं जिनमें उसने उन क्षेत्रों में प्रवेश किया है जो लंबे समय से न्यायपालिका के लिये 'शक्तियों के पृथक्करण' के सिद्धांत के कारण निषिद्ध थे, जो कि संविधान की मूल संरचना का हिस्सा हैं। उदाहरण :
    - राष्ट्रीय और राज्य राजमार्गों पर शराब की बिक्री पर प्रतिबंध: केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचना में केवल राष्ट्रीय राजमार्गों के किनारे शराब की दुकानों पर प्रतिबंध लगाने की बात कही गई, जबकि सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 142 को लागू करके राज्य राजमार्गों से 500 मीटर की दूरी पर प्रतिबंध लगा दिया।
- दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482:
  - यह धारा उच्च न्यायालय को न्याय सुनिश्चित करने के लिये कोई भी आदेश पारित करने की अनुमति देती है। यह अदालत को निचली अदालत की कार्यवाही को रद्द करने या FIR रद्द करने की शक्ति भी देता है।

- एससी/एसटी अधिनियम:
  - एससी/एसटी अधिनियम 1989 को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समुदायों के सदस्यों के खिलाफ भेदभाव और अत्याचार को रोकने के लिये संसद द्वारा अधिनियमित का एक अधिनियम है।
  - यह अधिनियम निराशाजनक वास्तविकता को भी संदर्भित करती है क्योंकि कई उपाय करने के बावजूद अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति उच्च जातियों के हाथों विभिन्न अत्याचारों के अधीन हैं।
  - अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 15 (भेदभाव का निषेध), 17 (अस्पृश्यता का उन्मूलन) तथा 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण) में उल्लिखित संवैधानिक सुरक्षा उपायों को ध्यान में रखते हुए अधिनियमित किया गया है, जिसमें सुरक्षा के दोहरे उद्देश्य हैं। यह कमज़ोर समुदायों के सदस्यों के साथ-साथ जाति आधारित अत्याचार के पीड़ितों को राहत और पुनर्वास प्रदान करता है।
  - अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति संशोधित अधिनियम (2018) में प्रारंभिक जाँच ज़रूरी नहीं है और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति पर अत्याचार के मामलों में FIR दर्ज करने के लिये जाँच अधिकारियों को अपने वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों की पूर्व मंजूरी की भी आवश्यकता नहीं है।

न्यायालय की अवमानना

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने यहाँ माना कि अनुच्छेद 129 के तहत अवमानना के लिये दंडित करने की उसकी शक्ति एक संवैधानिक शक्ति है, जिसे किसी भी कानून द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता है।

प्रमुख बिंदु

- निर्णय के प्रमुख बिंदु:
  - अवमानना के लिये दंड देने की शक्ति इस न्यायालय में निहित एक संवैधानिक शक्ति है जिसे विधायी अधिनियम द्वारा भी कम या समाप्त नहीं किया जा सकता है।
  - अनुच्छेद 142 (2) में कहा गया है कि "संसद द्वारा इस संबंध में बनाए गए किसी भी कानून के प्रावधानों के अधीन" सर्वोच्च न्यायालय के पास अपनी अवमानना की सजा पर कोई भी आदेश देने की पूरी शक्ति होगी।
    - हालाँकि अनुच्छेद 129 में कहा गया है कि सर्वोच्च न्यायालय अभिलेखों का न्यायालय होगा और उसके पास अवमानना के लिये दंड देने की शक्ति सहित इस प्रकार के न्यायालय की सभी शक्तियाँ होंगी।
  - दो प्रावधानों की तुलना से पता चलता है कि यद्यपि संविधान निर्माताओं ने यह महसूस किया कि अनुच्छेद 142 के खंड (2) के तहत न्यायालय की शक्तियाँ संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के अधीन हो सकती हैं, लेकिन जहाँ तक अनुच्छेद 129 का संबंध है, उसके संबंध में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है।
  - न्यायालय द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि अवमानना क्षेत्राधिकार को बनाए रखने का उद्देश्य न्यायिक मंचों की संस्था की गरिमा को बनाए रखना है।
- 'न्यायालय की अवमानना' के विषय में:
  - न्यायिक अवमानना अधिनियम, 1971 (Contempt of Court Act, 1971) के अनुसार, न्यायालय की अवमानना का अर्थ किसी न्यायालय की गरिमा तथा उसके अधिकारों के प्रति अनादर प्रदर्शित करना है।
    - अभिव्यक्ति 'अदालत की अवमानना' को संविधान द्वारा परिभाषित नहीं किया गया है।
    - हालाँकि, संविधान के अनुच्छेद 129 ने सर्वोच्च न्यायालय को स्वयं की अवमानना के लिये दंडित करने की शक्ति प्रदान की।
    - अनुच्छेद 215 ने उच्च न्यायालयों को संबंधित शक्ति प्रदान की।
  - न्यायालय का अवमानना अधिनियम, 1971 के अनुसार, न्यायालय की अवमानना दो प्रकार की होती है:
    - नागरिक अवमानना: न्यायालय के किसी भी निर्णय, डिक्री, निर्देश, आदेश, रिट अथवा अन्य किसी प्रक्रिया या किसी न्यायालय को दिये गए उपकरण के उल्लंघन के प्रति अवज्ञा को नागरिक अवमानना कहते हैं।
    - आपराधिक अवमानना: यह किसी भी मामले का प्रकाशन है या किसी अन्य कार्य को करना है जो किसी भी न्यायालय के अधिकार का हनन या उसका न्यूनीकरण करता है, या किसी भी न्यायिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करता है, या किसी अन्य तरीके से न्याय के प्रशासन में बाधा डालता है।
- संबंधित मुद्दे:
  - हालाँकि "निष्पक्ष" क्या है इसका निर्धारण न्यायाधीशों की विवेक पर छोड़ दिया गया है।
    - यह ओपन-एंडेड शर्तें कभी-कभी अनुच्छेद 19 के तहत भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संकट में डालता है।
    - ओपन-एंडेड शर्तें: अधिनियम की धारा 5 में प्रावधान है कि "निष्पक्ष आलोचना" या "निष्पक्ष टिप्पणी" अंतिम रूप से तय किये गए मामले की योग्यता पर अवमानना नहीं होगी।

- प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन: न्यायाधीशों को अक्सर अपने स्वयं हित में कार्य करते हुए देखा जा सकता है, इस प्रकार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है और जनता के विश्वास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिसे वे कार्यवाही के माध्यम से संरक्षित करना चाहते हैं।

केंद्रीय सूचना आयोग (CIC)

चर्चा में क्यों?

सर्वोच्च न्यायालय ने भारत संघ और सभी राज्यों को केंद्रीय सूचना आयोग (CIC) एवं राज्य सूचना आयोगों (SIC) में रिक्तियों तथा पेंडेंसी के संबंध में नवीनतम घटनाओं पर स्थिति रिपोर्ट दाखिल करने का निर्देश दिया है।

प्रमुख बिंदु:

केंद्रीय सूचना आयोग (CIC) के संदर्भ में:

- स्थापना: CIC की स्थापना सूचना का अधिकार अधिनियम (2005) के प्रावधानों के तहत वर्ष 2005 में केंद्र सरकार द्वारा की गई थी। यह संवैधानिक निकाय नहीं है।
- सदस्य: इसमें एक मुख्य सूचना आयुक्त होता है और दस से अधिक सूचना आयुक्त नहीं हो सकते हैं।
- नियुक्ति: उन्हें राष्ट्रपति द्वारा एक समिति की सिफारिश पर नियुक्त किया जाता है जिसमें अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्ष के नेता और प्रधानमंत्री द्वारा नामित केंद्रीय कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं।
- क्षेत्राधिकार: आयोग का अधिकार क्षेत्र सभी केंद्रीय लोक प्राधिकरणों तक है।
- कार्यकाल: मुख्य सूचना आयुक्त और एक सूचना आयुक्त केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित अवधि या 65 वर्ष की आयु तक (जो भी पहले हो) पद पर रह सकता है।
  - वे पुनर्नियुक्ति के पात्र नहीं हैं।
- CIC की शक्तियाँ और कार्य:
  - आयोग का कर्तव्य है कि वह सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत किसी विषय पर प्राप्त शिकायतों के मामले में संबंधित व्यक्ति से पूछताछ करे।
  - आयोग उचित आधार होने पर किसी भी मामले में स्वत: संज्ञान (Suo-Moto Power) लेते हुए जाँच का आदेश दे सकता है।
  - आयोग के पास पूछताछ करने हेतु सम्मन भेजने, दस्तावेज़ों की आवश्यकता आदि के संबंध में सिविल कोर्ट की शक्तियाँ होती हैं।

राज्य सूचना आयोग:

- इसका गठन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है।
- इसमें एक राज्य मुख्य सूचना आयुक्त (State Chief Information Commissioner- SCIC) तथा मुख्यमंत्री की अध्यक्षता वाली नियुक्ति समिति की सिफारिश पर राज्यपाल द्वारा नियुक्त किये जाने वाले अधिकतम 10 राज्य सूचना आयुक्त (State Information Commissioners-SIC) शामिल होते हैं।

मुद्दे:

- देरी और बैकलॉग:
  - CIC को आयोग के समक्ष दायर की गई अपील/शिकायत के निपटान में औसतन 388 दिन (एक वर्ष से अधिक) लगते हैं।
  - पिछले वर्ष जारी एक रिपोर्ट बताती है कि केंद्र और राज्य सूचना आयोगों (IC) में सूचना के अधिकार के अब तक 2.2 लाख से अधिक मामले लंबित हैं।
- दंड का कोई प्रावधान नहीं:
  - रिपोर्ट में पाया गया कि कानून के उल्लंघन के लिये सरकारी अधिकारियों को शायद ही किसी सज़ा का सामना करना पड़ता है।
  - पिछले विश्लेषण में लगभग 59% उल्लंघनों के बावजूद केवल 2.2% मामलों में जुर्माना लगाया गया था, जो कि जुर्माना लगाना चाहिये।
- रिक्तियाँ:
  - न्यायालय के बार-बार निर्देश के बावजूद CIC में अभी भी तीन रिक्तियाँ हैं।
- पारदर्शिता की कमी:
  - चयन के मानदंड आदि का भी रिकॉर्ड नहीं रखा गया है।

सूचना का अधिकार अधिनियम:

- श्री कुलवाल बनाम जयपुर नगर निगम मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के माध्यम से वर्ष 1986 में आरटीआई कानून की उत्पत्ति हुई, जिसमें यह निर्देश दिया गया कि संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत प्रदान की गई भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता स्पष्ट रूप से सूचना का अधिकार है, जैसा कि सूचना वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का नागरिकों द्वारा पूरी तरह से उपयोग नहीं किया जा सकता है
- इसका उद्देश्य भारतीय नागरिकों को व्यावहारिक रूप से सरकार और विभिन्न सार्वजनिक उपयोगिता सेवा प्रदाताओं से कुछ प्रासंगिक प्रश्न पूछने के अपने अधिकारों का प्रयोग करने में सक्षम बनाना है।
- सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम 2002 को आरटीआई अधिनियम में बदल दिया गया।

- इस अधिनियम का उद्देश्य नागरिकों को सरकारी एजेंसियों की त्वरित सेवाओं का लाभ उठाने में मदद करना था क्योंकि यह अधिनियम उन्हें यह सवाल पूछने में सक्षम बनाता है कि किसी विशेष आवेदन या आधिकारिक कार्यवाही में देरी क्यों होती है।
- इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य भ्रष्टाचार मुक्त भारत के सपने को साकार करना है।

न्यायिक समीक्षा

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय (SC) ने सेंट्रल विस्टा परियोजना (Central Vista project) को ऐसी विशिष्ट परियोजना मानने से इनकार कर दिया जिसके लिये बृहत्तर या व्यापक न्यायिक समीक्षा की आवश्यकता हो।

- सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायालय की भूमिका विधि की वैधता और सरकारी कार्यों सहित संवैधानिकता की जाँच करने तक सीमित है। विकास का अधिकार एक बुनियादी मानव अधिकार है और राज्य के किसी भी अंग से विकास की प्रक्रिया में तब तक बाधक बनने की आशंका नहीं होती है जब तक कि सरकार कानून के अनुसार कार्य करती है।
- नई दिल्ली की सेंट्रल विस्टा परियोजना में राष्ट्रपति भवन, संसद भवन, उत्तर और दक्षिण ब्लॉक, इंडिया गेट, राष्ट्रीय अभिलेखागार शामिल हैं।
- भारतीय संविधान में न्यायिक समीक्षा को अमेरिकी संविधान की तर्ज पर अपनाया गया है।

प्रमुख बिंदु:

न्यायिक समीक्षा:

- न्यायिक समीक्षा विधायी अधिनियमों तथा कार्यपालिका के आदेशों की संवैधानिकता की जाँच करने हेतु न्यायपालिका की शक्ति है जो केंद्र एवं राज्य सरकारों पर लागू होती है।
- कानून की अवधारणा:
  - विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया: इसका अर्थ है कि विधायिका या संबंधित निकाय द्वारा अधिनियमित कानून तभी मान्य होता है जब सही प्रक्रिया का पालन किया गया हो।
  - कानून की उचित प्रक्रिया: यह सिद्धांत न केवल इस आधार पर मामले की जाँच करता है कि कोई कानून किसी व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित तो नहीं करता है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि कानून उचित और न्यायपूर्ण हो।
  - भारत में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है।
- न्यायिक समीक्षा के दो महत्त्वपूर्ण कार्य हैं, जैसे- सरकारी कार्रवाई को वैध बनाना और सरकार द्वारा किये गए किसी भी अनुचित कृत्य के खिलाफ संविधान का संरक्षण करना।
  - न्यायिक समीक्षा को संविधान की मूल संरचना (इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण केस 1975) माना जाता है।
  - न्यायिक समीक्षा को भारतीय न्यायपालिका के व्याख्याकार और पर्यवेक्षक की भूमिका में देखा जाता है।
  - स्वत: संज्ञान के मामले और लोक हित याचिका (PIL), लोकस स्टैंडी (Locus Standi) के सिद्धांत को विराम देने के साथ ही न्यायपालिका को कई सार्वजनिक मुद्दों में हस्तक्षेप करने की अनुमति दी गई है, उस स्थिति में भी जब पीड़ित पक्ष द्वारा कोई शिकायत नहीं की गई हो।

न्यायिक समीक्षा के प्रकार:

- विधायी कार्यों की समीक्षा:
  - इस समीक्षा का तात्पर्य यह सुनिश्चित करना है कि विधायिका द्वारा पारित कानून के मामले में संविधान के प्रावधानों का अनुपालन किया गया है।
- प्रशासनिक कार्रवाई की समीक्षा:
  - यह प्रशासनिक एजेंसियों पर उनकी शक्तियों निर्वहन करते समय उनपर संवैधानिक अनुशासन लागू करने के लिये एक उपकरण है।
- न्यायिक निर्णयों की समीक्षा:
  - इस समीक्षा का उपयोग न्यायपालिका द्वारा पिछले निर्णयों में किसी भी प्रकार का बदलाव करने या उसे सही करने के लिये किया जाता है।

न्यायिक समीक्षा का महत्त्व:

- यह संविधान की सर्वोच्चता बनाए रखने के लिये आवश्यक है।
- विधायिका और कार्यपालिका द्वारा सत्ता के संभावित दुरुपयोग की जाँच करने के लिये आवश्यक है।
- यह लोगों के अधिकारों की रक्षा करता है।
- यह संघीय संतुलन बनाए रखता है।
- यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिये आवश्यक है।
- यह अधिकारियों के अत्याचार को रोकता है।

न्यायिक समीक्षा से संबंधित मुद्दे:

- यह सरकार के कामकाज को सीमित करती है।

- जब यह किसी मौजूदा कानून को अधिभावी/रद्द (Overrides) करता है तो यह संविधान द्वारा स्थापित शक्तियों की सीमा का उल्लंघन है।
  - भारत में शक्तियों के बजाय कार्यों का पृथक्करण किया गया है।
  - शक्तियों के पृथक्करण की अवधारणा का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता है। हालाँकि जाँच और संतुलन (Checks and Balances) की व्यवस्था इस तरह से की गई है कि न्यायपालिका के पास विधायिका द्वारा पारित किसी भी असंवैधानिक कानून को रद्द करने की शक्ति है।
- न्यायाधीशों द्वारा किसी मामले में लिया गया निर्णय अन्य मामलों के लिये मानक बन जाता है, हालाँकि अन्य मामलों में परिस्थितियाँ अलग हो सकती हैं।
- न्यायिक समीक्षा व्यापक पैमाने पर आम जनता को नुकसान पहुँचा सकती है, क्योंकि किसी कानून के विरुद्ध दिया गया निर्णय व्यक्तिगत उद्देश्यों से प्रभावित हो सकता है।
- न्यायालय के बार-बार हस्तक्षेप करने से सरकार की ईमानदारी, गुणवत्ता और दक्षता पर लोगों का विश्वास कम हो सकता है।

न्यायिक समीक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान

- किसी भी कानून को अमान्य घोषित करने के लिये न्यायालयों को सशक्त बनाने संबंधी संविधान में कोई भी प्रत्यक्ष अथवा विशिष्ट प्रावधान नहीं है, लेकिन संविधान के तहत सरकार के प्रत्येक अंग पर कुछ निश्चित सीमाएँ लागू की गई हैं, जिसके उल्लंघन से कानून शून्य हो जाता है।
- न्यायालय को यह तय करने का कार्य सौंपा गया है कि संविधान के तहत निर्धारित सीमा का उल्लंघन किया गया है अथवा नहीं है।
- न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया का समर्थन करने संबंधी कुछ विशिष्ट प्रावधान
  - अनुच्छेद 372 (1): यह अनुच्छेद भारतीय संविधान के लागू होने से पूर्व बनाए गए किसी कानून की न्यायिक समीक्षा से संबंधित प्रावधान करता है।
  - अनुच्छेद 13: यह अनुच्छेद घोषणा करता है कि कोई भी कानून जो मौलिक अधिकारों से संबंधित किसी प्रावधान का उल्लंघन करता है, मान्य नहीं होगा।
  - अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों का रक्षक एवं गारंटीकर्त्ता की भूमिका प्रदान करते हैं।
  - अनुच्छेद 251 और अनुच्छेद 254 में कहा गया है कि संघ और राज्य कानूनों के बीच असंगतता के मामले में राज्य कानून शून्य हो जाएगा।
  - अनुच्छेद 246 (3) राज्य सूची से संबंधित मामलों पर राज्य विधायिका की अनन्य शक्तियों को सुनिश्चित करता है।
  - अनुच्छेद 245 संसद एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों की क्षेत्रीय सीमा तय करने से संबंधित है।
  - अनुच्छेद 131-136 में सर्वोच्च न्यायालय को व्यक्तियों तथा राज्यों के बीच, राज्यों तथा संघ के बीच विवादों में निर्णय लेने की शक्ति प्रदान की गई है।
  - अनुच्छेद 137 सर्वोच्च न्यायालय को उसके द्वारा सुनाए गए किसी भी निर्णय या आदेश की समीक्षा करने हेतु एक विशेष शक्ति प्रदान करता है।

विविध

चुनाव मुफ्त

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की गई है जिसमें भारत के चुनाव आयोग (Election Commission of India-ECI) द्वारा चुनाव चिह्न को ज़ब्त करने या चुनाव से पहले सार्वजनिक धन से "तर्कहीन मुफ्त (irrational freebies)" का वादा करने या वितरित करने वाले राजनीतिक दल को अपंजीकृत करने का निर्देश देने की मांग की गई है।

- याचिका में यह तर्क दिया गया है कि राजनीतिक दलों द्वारा हाल ही में चुनावों को ध्यान में रखते हुए मुफ्त उपहार देकर मतदाताओं को प्रभावित करने की प्रवृत्ति न केवल लोकतांत्रिक मूल्यों के अस्तित्त्व के लिये सबसे बड़ा खतरा है बल्कि संविधान की भावना को भी चोट पहुँचाती है।

प्रमुख बिंदु

- भारतीय राजनीति में मुफ्त (Freebies) के बारे में:
  - राजनीतिक दल लोगों के वोट को सुरक्षित करने के लिये मुफ्त बिज़ली / पानी की आपूर्ति, बेरोज़गारों, दैनिक वेतनभोगी श्रमिकों एवं महिलाओं, लैपटॉप, स्मार्टफोन जैसे गैजेट आदि को देने का वादा करते हैं।
- याचिका के बारे में:
  - याचिकाकर्त्ता का कहना है कि तर्कहीन मुफ्त के मनमाने वादे स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव हेतु चुनाव आयोग के जनादेश का उल्लंघन करते हैं।
  - निजी वस्तुओं-सेवाओं का वितरण जो सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये नहीं हैं, सार्वजनिक धन से संविधान के अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता), 162 (राज्य की कार्यकारी शक्ति), 266 (3) (भारत की संचित निधि से व्यय) और 282 (विवेकाधीन अनुदान) का स्पष्ट रूप से उल्लंघन करता है।

- याचिका में सर्वोच्च न्यायालय से इस संबंध में एक कानून बनाने के लिये संघ को निर्देश देने की भी मांग की गई है।
- इसने चुनाव चिह्न (आरक्षण और आवंटन) आदेश, 1968 के प्रासंगिक पैराग्राफ में एक अतिरिक्त शर्त जोड़ने के लिये चुनाव आयोग को निर्देश देने की मांग की।
  - यह एक राज्य पार्टी के रूप में मान्यता हेतु शर्तों से संबंधित है कि "राजनीतिक दल चुनाव से पहले सार्वजनिक निधि से तर्कहीन मुफ्त का वादा / वितरण नहीं करेगा"।

- मुफ्त उपहारों/वादों के पक्ष में तर्क:
  - अपेक्षाओं को पूरा करने हेतु आवश्यक: भारत जैसे देश में जहाँ राज्यों में विकास का एक निश्चित स्तर है (या नहीं है), चुनावों के उद्भव पर लोगों की ओर से ऐसी उम्मीदें होती हैं जो मुफ्त के ऐसे वादों से पूरी होती हैं।
    - इसके अलावा जब आस-पास के अन्य राज्यों के लोगों (विभिन्न सत्तारूढ़ दलों के साथ) को मुफ्त उपहार वितरित किये जाते हैं तो तुलनात्मक अपेक्षाएँ भी उत्पन्न होती हैं।
  - कम विकसित राज्यों के लिये सहायक: गरीबी से पीड़ित आबादी के एक बड़े हिस्से के साथ तुलनात्मक रूप से निम्न स्तर के विकास वाले राज्यों के लिये इस तरह के मुफ्त उपहार आवश्यकता/मांग-आधारित हो जाते हैं और लोगों को अपने स्वयं के उत्थान हेतु इस तरह की सब्सिडी की पेशकश करना आवश्यक हो जाता है।
- मुफ्त उपहारों से संबंधित मुद्दे:
  - आर्थिक भार: यह राज्य के साथ-साथ केंद्र के खजाने पर भारी आर्थिक बोझ डालता है।
  - स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के विरुद्ध: चुनाव से पहले सार्वजनिक धन से अतार्किक मुफ्त का वादा मतदाताओं को अनुचित रूप से प्रभावित करता है तथा चुनाव प्रक्रिया की शुद्धता को बाधित करता है।
    - यह एक अनैतिक प्रथा है जो मतदाताओं को रिश्वत देने के समान है।
  - समानता के सिद्धांत के विपरीत: चुनाव से पहले सार्वजनिक धन से निजी वस्तुओं या सेवाओं का वितरण, जो सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये नहीं है, संविधान के कई अनुच्छेदों का उल्लंघन करता है, जिसमें अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता) शामिल है।
- सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय: वर्ष 2013 के एस सुब्रमण्यम बालाजी बनाम तमिलनाडु सरकार मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अवास्तविक चुनावी वादे और मुफ्त उपहार एक गंभीर मुद्दा है जो चुनाव में समान अवसर प्रदान करने की भावना का उलंघन करता है।
  - न्यायालय ने यह भी माना कि चुनावी घोषणा पत्र में वादों को जनप्रतिनिधित्व कानून या किसी अन्य प्रचलित कानून के तहत "भ्रष्ट आचरण" के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है इसलिये जब सत्ताधारी पार्टी राज्य विधानसभा में विनियोग अधिनियम पारित करके इस उद्देश्य हेतु सार्वजनिक धन का उपयोग करती है तो मुफ्त वितरण को रोकना संभव नहीं है।
  - न्यायालय ने कहा कि वर्तमान ऐसा कोई अधिनियम नहीं है, जो चुनाव घोषणापत्र को प्रत्यक्ष तौर पर नियंत्रित करता हो और साथ ही न्यायालय ने चुनाव आयोग को सभी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के परामर्श से इस संबंध में दिशा-निर्देश तैयार करने का निर्देश दिया है।

शीतकालीन सत्र 2021

चर्चा में क्यों?

हाल ही में संसद के शीतकालीन सत्र को अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया गया है (पुन: बैठक के लिये दिन निर्धारित किये बिना संसद की बैठक को समाप्त करना)। इस सत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण विधानों को पारित किया गया।

प्रमुख बिंदु

- संसद की बैठक की समाप्ति: दोनों सदनों में संसद की बैठक को निम्नलिखित प्रावधानों के द्वारा समाप्त किया जा सकता है:
  - स्थगन (Adjournment)
  - अनिश्चितकाल के लिये स्थगन (Adjournment sine die),
  - सत्रावसान (Prorogation)
  - विघटन (राज्यसभा के लिये लागू नहीं)
- स्थगन (Adjournment): स्थगन एक निश्चित समय के लिये बैठक में कामकाज को निलंबित कर देता है। स्थगन कुछ घंटे, दिन या सप्ताह के लिये हो सकता है।
  - जब बैठक अगली बैठक के लिये नियत किसी निश्चित समय/तिथि के बिना समाप्त हो जाती है तो इसे अनिश्चितकाल के लिये स्थगन कहा जाता है।
  - स्थगन और अनिश्चितकाल के लिये स्थगन की शक्ति सदन के पीठासीन अधिकारी के पास होती है।
- अनिश्चितकाल के लिये स्थगन: अनिश्चितकाल के लिये स्थगन का अर्थ है अनिश्चितकाल के लिये संसद की बैठक को समाप्त करना, यानी सदन को फिर से शुरू करने हेतु कोई एक दिन निर्धारित किये बिना स्थगित कर दिया जाता है, तो इसे स्थगन कहा जाता है।

- अनिश्चितकाल के लिये स्थगन की शक्ति सदन के पीठासीन अधिकारी के पास होती है।
- हालाँकि किसी सदन का पीठासीन अधिकारी उस तारीख या समय से पहले या सदन के अनिश्चितकाल के लिये स्थगित होने के बाद किसी भी समय सदन की बैठक बुला सकता है।

- सत्रावसान (Prorogation):.
  - सत्रावसान शब्द का अर्थ संविधान के अनुच्छेद 85(2)(ए) के तहत राष्ट्रपति द्वारा दिये गए आदेश द्वारा सदन के एक सत्र की समाप्ति से है।
  - सत्रावसान सदन की बैठक और सत्र दोनों को समाप्त करना है और आमतौर पर यह पीठासीन अधिकारी द्वारा सदन को अनिश्चितकाल के लिये स्थगित करने के कुछ दिनों के भीतर किया जाता है।
  - राष्ट्रपति सत्र के सत्रावसान के लिये एक अधिसूचना जारी करता है।
  - हालाँकि राष्ट्रपति सत्र के दौरान सदन का सत्रावसान भी कर सकता है।
  - यह ध्यान दिया जाना चाहिये कि बिल पेश करने के अलावा सभी लंबित नोटिस व्यपगत हो जाते हैं।
  - एक सदन के सत्रावसान और नए सत्र में उसके पुन: समवेत होने के बीच की अवधि को एक अवकाश कहा जाता है।
- विघटन (Dissolution): जब भी कोई विघटन होता है, तो इससे मौजूदा सदन का कार्यकाल समाप्त हो जाता है और आम चुनाव के बाद एक नए सदन का गठन होता है।
  - हालाँकि केवल लोकसभा का विघटन हो सकता है राज्यसभा स्थायी सदन होने के कारण विघटित नहीं हो सकती है।

संसद के सदनों द्वारा पारित कुछ महत्त्वपूर्ण विधेयक:

- कृषि कानून निरसन विधेयक, 2021: किसानों के विरोध को देखते हुए निम्नलिखित तीन कृषि कानूनों को निरस्त करने के लिये विधेयक पेश करके पारित किया गया:
  - मूल्य आश्वासन और कृषि सेवा अधिनियम, 2020 पर किसान (सशक्तीकरण और संरक्षण) समझौता
  - किसान उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्द्धन और सुविधा) अधिनियम, 2020
  - आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम, 2020
- बाँध सुरक्षा विधेयक, 2021: यह बाँध की विफलता से संबंधित आपदाओं की रोकथाम के लिये निर्दिष्ट बाँध की निगरानी, निरीक्षण, संचालन और रखरखाव का प्रावधान करता है।
  - यह उनके सुरक्षित कामकाज को सुनिश्चित करने के लिये और उससे जुड़े या उसके आनुषंगिक मामलों के लिये संस्थागत तंत्र प्रदान करने का भी प्रयास करता है।
- सहायक प्रजनन प्रौद्योगिकी (विनियम) विधेयक, 2021: यह सहायक प्रजनन प्रौद्योगिकी क्लीनिकों और सहायक प्रजनन प्रौद्योगिकी बैंकों के विनियमन एवं पर्यवेक्षण, दुरुपयोग की रोकथाम, सहायक प्रजनन प्रौद्योगिकी सेवाओं के सुरक्षित व नैतिक अभ्यास का प्रावधान करता है।
  - इसने राष्ट्रीय बोर्ड, राज्य बोर्डों और राष्ट्रीय रजिस्ट्री की स्थापना की भी परिकल्पना की।
- सरोगेसी (विनियमन) विधेयक, 2021: यह देश में सरोगेसी सेवाओं के नियमन का प्रावधान करता है।
  - यह सरोगेट माताओं के संभावित शोषण को रोकता है तथा सरोगेसी के माध्यम से पैदा हुए बच्चों के अधिकारों की रक्षा करता है।
- राष्ट्रीय औषधीय शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान संशोधन विधेयक, 2021: यह स्पष्टता प्रदान करता है कि राष्ट्रीय औषधीय शिक्षा और अनुसंधान संस्थान अधिनियम के तहत स्थापित संस्थान राष्ट्रीय महत्त्व के संस्थान होंगे।
  - इसने एक केंद्रीय निकाय की भी स्थापना की, जिसे औषधीय शिक्षा और अनुसंधान एवं मानकों के रखरखाव आदि के समन्वित विकास सुनिश्चित करने के लिये परिषद कहा जाएगा।
- उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश (वेतन और सेवा की शर्तें) संशोधन विधेयक, 2021: यह स्पष्टता लाने का प्रयास करता है कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एक निश्चित आयु प्राप्त करने पर पेंशन या पारिवारिक पेंशन की अतिरिक्त मात्रा पाने के हकदार कब होते हैं।
- नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस (संशोधन) विधेयक, 2021: बिल अधिनियम की धारा 27ए में प्रारूपण त्रुटि को ठीक करने के लिये इस वर्ष (2021) की शुरुआत में प्रख्यापित एक अध्यादेश की जगह लेगा।
- दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना (संशोधन) विधेयक, 2021: यह केंद्रीय जाँच ब्यूरो के निदेशक के कार्यकाल को जनहित में एक बार में एक वर्ष तक बढ़ाने का प्रावधान करता है, जब तक कि प्रारंभिक नियुक्ति में उल्लिखित अवधि सहित कुल मिलाकर पाँच साल पूरे नहीं हो जाते।
- केंद्रीय सतर्कता आयोग (संशोधन) विधेयक, 2021: यह प्रवर्तन निदेशालय के निदेशक के कार्यकाल को जनहित में एक बार में एक वर्ष तक बढ़ाने का प्रावधान करता है, जब तक कि प्रारंभिक नियुक्ति में उल्लिखित अवधि सहित कुल मिलाकर पाँच वर्ष पूरे नहीं हो जाते।
- चुनाव कानून (संशोधन) विधेयक, 2021: यह विभिन्न स्थानों पर एक ही व्यक्ति के कई नामांकन के खतरे को रोकने के लिये मतदाता सूची डेटा को आधार पारिस्थितिकी तंत्र से जोड़ने का प्रावधान करता है।

पहला ऑडिट दिवस : कैग

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में प्रधानमंत्री ने पहले ऑडिट दिवस (16 नवंबर, 2021) को चिह्नित करने के लिये भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (CAG) के कार्यालय में सरदार वल्लभभाई पटेल की प्रतिमा का अनावरण किया।

- यह कैग (CAG) संस्थान की ऐतिहासिक स्थापना को चिह्नित करने के लिये मनाया जाता है। इसका उद्देश्य पारदर्शिता और सुशासन को बढ़ावा देने हेतु कैग (CAG) के समृद्ध योगदान को उजागर करना है।
- गिरीश चंद्र मुर्मू ने 8 अगस्त, 2020 को भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के रूप में पदभार ग्रहण किया।

प्रमुख बिंदु

- संवैधानिक निकाय: अनुच्छेद 148 कैग के एक स्वतंत्र कार्यालय का प्रावधान करता है। यह भारत की सर्वोच्च लेखापरीक्षा संस्था है।
  - CAG से संबंधित अन्य प्रावधानों में शामिल हैं: अनुच्छेद 149 (कर्त्तव्य और शक्तियाँ), अनुच्छेद 150 (संघ और राज्यों के खातों का विवरण), अनुच्छेद 151 (CAG की रिपोर्ट), अनुच्छेद 279 ('शुद्ध आय' की गणना आदि) तथा तीसरी अनुसूची (शपथ या प्रतिज्ञान) और छठी अनुसूची (असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन)।
- संक्षिप्त विवरण:
  - भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग के प्रमुख - 1753 में बनाए गए।
  - वह लोक व्यय का संरक्षक होने के साथ-साथ केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर देश की संपूर्ण वित्तीय प्रणाली को नियंत्रित करता है।
  - CAG को भारत सरकार की लोकतांत्रिक प्रणाली में एक संरक्षक दीवार कहा जाता है।
    - अन्य संस्थाओं में सर्वोच्च न्यायालय, निर्वाचन आयोग और संघ लोक सेवा आयोग शामिल हैं।
  - वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में कार्यपालिका (अर्थात् मंत्रिपरिषद) की संसद के प्रति जवाबदेही CAG की लेखापरीक्षा रिपोर्टों के माध्यम से सुनिश्चित की जाती है।
- नियुक्ति: उसे भारत के राष्ट्रपति के हस्ताक्षर और मुहर लगे एक अधिपत्र (Warrant) द्वारा नियुक्त किया जाता है।
- कार्यकाल: इसका कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक होता है। (दोनों में से जो भी पहले हो)
- निष्कासन: CAG को राष्ट्रपति द्वारा उसी आधार पर और उसी तरह हटाया जा सकता है जिस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपना पद धारण नहीं करता है।
  - दूसरे शब्दों में उसे राष्ट्रपति द्वारा संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित एक प्रस्ताव के आधार पर या तो साबित दुर्व्यवहार या अक्षमता के आधार पर हटाया जा सकता है।
- अन्य संबंधित बिंदु:
  - वह कार्यकाल समाप्त होने के बाद भारत सरकार या किसी भी राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य रोज़गार हेतु पात्र नहीं होगा।
  - वेतन और अन्य सेवा शर्तें संसद द्वारा निर्धारित की जाती हैं।
  - CAG के कार्यालय का प्रशासनिक व्यय, जिसमें उस कार्यालय में कार्यरत सभी व्यक्तियों का वेतन, भत्ते और पेंशन शामिल हैं, जो भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं जिन पर संसद में मतदान नहीं हो सकता।
  - कोई भी मंत्री संसद में CAG का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है।
- इसके कार्य और शक्तियाँ नियंत्रक और महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियाँ और सेवा शर्तें) अधिनियम, 1971 के तहत शामिल हैं।
  - CAG भारत की संचित निधि और प्रत्येक राज्य, केंद्रशासित प्रदेश जिसकी विधानसभा होती है, की संचित निधि से संबंधित खातों के सभी प्रकार के व्यय से संबंधित लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है।
  - वह भारत की आकस्मिक निधि और भारत के सार्वजनिक खाते के साथ-साथ प्रत्येक राज्य की आकस्मिक निधि व सार्वजनिक खाते से होने वाले सभी खर्चों का परीक्षण करता है।
  - वह केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के किसी भी विभाग के सभी ट्रेडिंग, विनिर्माण, लाभ- हानि खातों, बैलेंस शीट तथा अन्य अतिरिक्त खातों का ऑडिट करता है।
  - निम्नलिखित की प्राप्तियों और व्यय की लेखापरीक्षा करता है:
    - केंद्र या राज्य के राजस्व से पर्याप्त रूप से वित्तपोषित निकाय और प्राधिकरण;
    - सरकारी कंपनियाँ;
    - अन्य निगम और निकाय, जब संबंधित कानूनों द्वारा ऐसा आवश्यक हो।
  - राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा अनुशंसित किये जाने पर वह किसी अन्य प्राधिकरण के खातों का ऑडिट करता है, जैसे- कोई स्थानीय निकाय की लेखापरीक्षा।
  - संसद की लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) के मार्गदर्शक, मित्र और सलाहकार के रूप में भी कार्य करता है।

- सीमाएँ:
  - भारत का संविधान CAG को नियंत्रक के साथ-साथ महालेखा परीक्षक के रूप में देखता है। हालाँकि व्यवहारिक रूप से CAG केवल एक महालेखा परीक्षक की भूमिका निभा रहा है, नियंत्रक की नहीं।
  - दूसरे शब्दों में CAG का समेकित निधि से धन के मुद्दे पर कोई नियंत्रण नहीं है और कई विभाग CAG से विशिष्ट प्राधिकरण के बिना चेक जारी करके धन निकालने के लिये अधिकृत हैं, जो केवल लेखा परीक्षा चरण में संबंधित है जबकि व्यय पहले ही हो चुका है।
  - इस संबंध में भारत का CAG ब्रिटेन के CAG से पूरी तरह भिन्न है, जिसके पास नियंत्रक और महालेखा परीक्षक दोनों की शक्तियाँ हैं।
    - दूसरे शब्दों में ब्रिटेन में कार्यपालिका केवल CAG की स्वीकृति से ही सरकारी राजकोष से धन आहरित कर सकती है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

चर्चा में क्यों?

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) की 28वीं वर्षगाँठ 12 अक्तूबर, 2021 को मनाई गई।

प्रमुख बिंदु

- परिचय:
  - यह देश में मानवाधिकारों का प्रहरी है, यानी भारतीय संविधान द्वारा गारंटीकृत या अंतर्राष्ट्रीय अनुबंधों में शामिल और भारत में अदालतों द्वारा लागू कानून के तहत व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से संबंधित अधिकार शामिल हैं।
- स्थापना:
  - मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम (PHRA), 1993 के प्रावधानों के तहत 12 अक्तूबर, 1993 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (National Human Rights Commission-NHRC) की स्थापना की गई। इसे मानवाधिकार संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2006 और मानवाधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019 द्वारा संशोधित किया गया था।
  - यह पेरिस सिद्धांतों के अनुरूप स्थापित किया गया था, जिसे पेरिस (अक्तूबर 1991) में मानवाधिकारों के प्रचार और संरक्षण के लिये अपनाया गया था तथा दिसंबर 1993 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अनुमोदित किया गया था।
- संरचना:
  - प्रमुख सदस्य:
    - यह एक बहु-सदस्यीय निकाय है जिसमें एक अध्यक्ष और चार सदस्य होते हैं। एक व्यक्ति जो भारत का मुख्य न्यायाधीश या सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहा हो, वह अध्यक्ष होता है।
  - नियुक्ति:
    - इसके अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली छह सदस्यीय समिति, जिसमें प्रधानमंत्री सहित लोकसभा अध्यक्ष, राज्यसभा का उप-सभापति, संसद के दोनों सदनों के मुख्य विपक्षी नेता तथा केंद्रीय गृहमंत्री शामिल होते हैं, की सिफारिशों के आधार पर की जाती है।
  - कार्यकाल:
    - राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष या वे 70 वर्ष की आयु (जो भी पहले हो) तक पद धारण करते हैं।
    - राष्ट्रपति कुछ परिस्थितियों में अध्यक्ष या किसी सदस्य को पद से हटा सकता है।
- भूमिका और कार्य:
  - आयोग के पास दीवानी अदालत की सभी शक्तियाँ हैं और इसकी कार्यवाही एक न्यायिक विशेषता है।
  - यह मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायतों की जाँच के उद्देश्य से केंद्र सरकार या राज्य सरकार के किसी अधिकारी या जाँच एजेंसी की सेवाओं का उपयोग करने के लिये अधिकृत है।
  - यह किसी मामले को उसके घटित होने के एक वर्ष के भीतर देख सकता है, अर्थात् आयोग को मानवाधिकारों का उल्लंघन किये जाने की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति के बाद किसी भी मामले की जाँच करने का अधिकार नहीं है।
  - आयोग के कार्य मुख्यत: सिफारिशी प्रकृति के हैं।
    - इसके पास मानवाधिकारों के उल्लंघन करने वालों को दंडित करने की शक्ति नहीं है और न ही पीड़ित को आर्थिक सहायता सहित कोई राहत देने की शक्ति है।
  - सशस्त्र बलों के सदस्यों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन के संबंध में इसकी भूमिका, शक्तियाँ और अधिकार क्षेत्र सीमित हैं।
  - जब निजी पार्टियों के माध्यम से मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है तो उसे कार्रवाई करने का अधिकार नहीं है।

चुनाव चिह्न

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में भारत निर्वाचन आयोग (Election Commission of India-ECI) ने एक राजनीतिक दल के चुनाव चिह्न को फ्रीज़ (Freeze) करने का फैसला लिया है।

- चुनाव चिह्न (आरक्षण और आवंटन) आदेश, 1968 चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों को मान्यता देने और चुनाव चिह्न आवंटित करने का अधिकार देता है।

प्रमुख बिंदु

- संदर्भ:
  - एक चुनावी/चुनाव चिन्ह किसी राजनीतिक दल को आवंटित एक मानकीकृत प्रतीक है।
  - उनका उपयोग पार्टियों द्वारा अपने प्रचार अभियान के दौरान किया जाता है और इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVMs) पर दर्शाया जाता है, जिससे मतदाता संबंधित पार्टी के लिये चिन्ह का चुनाव कर मतदान कर सकता है।
  - इन्हें निरक्षर लोगों के लिये मतदान की सुविधा हेतु प्रस्तुत किया गया था, जो मतदान करते समय पार्टी का नाम नहीं पढ़ पाते।
  - 1960 के दशक में यह प्रस्तावित किया गया था कि चुनावी प्रतीकों का विनियमन, आरक्षण और आवंटन संसद के एक कानून यानी प्रतीक आदेश के माध्यम से किया जाना चाहिये।
  - इस प्रस्ताव के जवाब में निर्वाचन आयोग ने कहा कि राजनीतिक दलों की मान्यता की निगरानी चुनाव चिह्न (आरक्षण और आवंटन) आदेश, 1968 के प्रावधानों द्वारा की जाती है और इसी के अनुसार चिह्नों का आवंटन भी होगा।
    - निर्वाचन आयोग, चुनाव के उद्देश्य से राजनीतिक दलों को पंजीकृत करता है और उनके चुनावी प्रदर्शन के आधार पर उन्हें राष्ट्रीय या राज्य पार्टियों के रूप में मान्यता देता है। अन्य पार्टियों को केवल पंजीकृत गैर-मान्यता प्राप्त पार्टियों के रूप में घोषित किया जाता है।
    - राष्ट्रीय या राज्य पार्टियों के रूप में मान्यता कुछ विशेषाधिकारों को पार्टियों के अधिकार के रूप में निर्धारित करती है जैसे- पार्टी प्रतीकों का आवंटन, टेलीविज़न और रेडियो स्टेशनों पर राजनीतिक प्रसारण के लिये समय का प्रावधान तथा मतदाता सूची तक पहुँच।
    - प्रत्येक राष्ट्रीय दल और राज्य स्तरीय पार्टी को क्रमशः पूरे देश तथा राज्यों में उपयोग के लिये विशेष रूप से आरक्षित एक प्रतीक चिह्न आवंटित किया जाता है।
- चुनाव चिह्न (आरक्षण और आवंटन) आदेश, 1968:
  - आदेश के पैरा 15 के तहत चुनाव आयोग प्रतिद्वंद्वी समूहों या किसी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल के वर्गों के बीच विवादों का फैसला कर सकता है और इसके नाम तथा चुनाव चिह्न पर दावा कर सकता है।
    - आदेश के तहत विवाद या विलय के मुद्दों का फैसला करने के लिये निर्वाचन आयोग एकमात्र प्राधिकरण है। सर्वोच्च न्यायालय (SC) ने वर्ष 1971 में सादिक अली और एक अन्य बनाम ECI में इसकी वैधता को बरकरार रखा।
  - यह मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय और राज्य पार्टियों के विवादों पर लागू होता है।
  - पंजीकृत लेकिन गैर-मान्यता प्राप्त पार्टियों में विभाजन के मामलों में चुनाव आयोग आमतौर पर विवाद में शामिल गुटों को अपने मतभेदों को आंतरिक रूप से हल करने या अदालत जाने की सलाह देता है।
  - चुनाव आयोग द्वारा अब तक लगभग सभी विवादों में पार्टी के प्रतिनिधियों/ पदाधिकारियों, सांसदों और विधायकों के स्पष्ट बहुमत ने एक गुट का समर्थन किया है।
  - वर्ष 1968 से पहले चुनाव आयोग ने चुनाव नियम, 1961 के संचालन के तहत अधिसूचना और कार्यकारी आदेश जारी किये।
  - जिस दल को पार्टी का चिह्न मिला था, उसके अलावा पार्टी के अलग हुए समूह को खुद को एक अलग पार्टी के रूप में पंजीकृत कराना पड़ा।
    - वे पंजीकरण के बाद राज्य या केंद्रीय चुनावों में अपने प्रदर्शन के आधार पर ही राष्ट्रीय या राज्य पार्टी की स्थिति का दावा कर सकते थे।

मत की गोपनीयता

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि किसी भी चुनाव में, चाहे वह संसदीय हो या राज्य विधानमंडल का, मतदान की गोपनीयता बनाए रखना अनिवार्य है।

- इसने 'पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़' मामले में अपने वर्ष 2013 के फैसले को दोहराया।

प्रमुख बिंदु:

नवीनतम निर्णय की मुख्य विशेषताएँ:

- मौलिक अधिकार का भाग: गोपनीयता अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का ही एक भाग है।
- किसी की पसंद की गोपनीयता से ही लोकतंत्र मज़बूत होता है।

- आधारभूत ढाँचे का हिस्सा: लोकतंत्र और स्वतंत्र चुनाव संविधान के आधारभूत ढाँचे का हिस्सा हैं।
  - केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य मामले (1973) के ऐतिहासिक निर्णय में 'मूल संरचना' की अवधारणा अस्तित्व में आई।
- बूथ कैप्चरिंग पर: बूथ कैप्चरिंग और/या फर्जी वोटिंग को लोहे के हाथों से निपटा जाना चाहिये, क्योंकि यह अंततः कानून और लोकतंत्र के शासन को प्रभावित करता है।
  - किसी को भी स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के अधिकार को कमज़ोर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।
- गैर-कानूनी सभा पर: एक बार जब गैर-कानूनी सभा सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में स्थापित हो जाती है, तो गैर-कानूनी सभा का प्रत्येक सदस्य दंगा करने के अपराध का दोषी होता है।
  - बल का उपयोग: भले ही यह विधानसभा के किसी एक सदस्य द्वारा किया गया मामूली सा व्यवहार हो, परंतु यदि इसे एक बार गैर-कानूनी कार्य के रूप में स्थापित कर दिया गया तो इसे दंगों की परिभाषा में शामिल किया जाता है।
  - यह आवश्यक नहीं है कि गैर-कानूनी बल या हिंसा सभी के द्वारा हो, लेकिन यह दायित्व विधानसभा के सभी सदस्यों के लिये है।
  - भारतीय कानून के अनुसार, 'गैर-कानूनी सभा' की परिभाषा भारतीय दंड संहिता की धारा 141 में निर्धारित की गई है।

पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़ केस, 2013 में निर्णय:

- सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से जो दो मुख्य बातें सामने आईं, वे इस प्रकार हैं:
  - वोट के अधिकार में वोट न देने का अधिकार अर्थात् अस्वीकार करने का अधिकार भी शामिल है।
  - गोपनीयता का अधिकार स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव का एक अभिन्न अंग है।
- अस्वीकार करने का अधिकार: इसका तात्पर्य है कि मतदान करते समय एक मतदाता को चुनाव के दौरान किसी भी उम्मीदवार को न चुनने का भी पूर्ण अधिकार है।
  - इस तरह के अधिकार का तात्पर्य तटस्थ रहने के विकल्प से है। यह वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से उद्भूत हुआ है।
  - मतदान के समय 'उपरोक्त में से कोई नहीं' ('None of the Above'- NOTA) बटन का विकल्प शामिल करने से चुनावी प्रक्रिया में जनता की भागीदारी बढ़ सकती है।
- गोपनीयता का अधिकार:
  - भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 के अनुसार प्रतिशोध, दबाव या ज़बरदस्ती के डर के बिना मतदान करना मतदाता का केंद्रीय अधिकार है।
    - अतः निर्वाचक की पहचान की सुरक्षा करना और उसे गोपनीयता प्रदान करना स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों का अभिन्न हिस्सा है।
  - मतदान करने वाले मतदाताओं और मतदान न करने वाले मतदाताओं के बीच अंतर करना भारतीय संविधान के अनुच्छेद-14, अनुच्छेद-19(1)(A) तथा अनुच्छेद-21 का उल्लंघन है।
  - मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा का अनुच्छेद 21(3) और 'इंटरनेशनल कोवेनेंट ऑन सिविल एंड पॉलिटिकस राईट' का अनुच्छेद-25(B) 'गोपनीयता के अधिकार' से संबंधित हैं।

अन्य संबंधित निर्णय:

- इससे पूर्व सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्वीकार किया था कि मतपत्रों की गोपनीयता का सिद्धांत संवैधानिक लोकतंत्र का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है और इसे जनप्रतिनिधित्व अधिनियम (RPA) 1951 की धारा 94 के तहत संदर्भित किया गया है।
  - यह धारा मतदाताओं के वोट की पसंद के बारे में गोपनीयता बनाए रखने के विशेषाधिकार को बरकरार रखती है।

लोकपाल के लिये जाँच निदेशक

चर्चा में क्यों?

हाल ही में सूचना का अधिकार (RTI) के अंतर्गत मांगे गए उत्तर के जवाब से पता चला है कि लोकपाल (Lokpal) के अस्तित्व में आने के दो वर्ष से अधिक समय के बाद भी केंद्र ने अब तक जाँच निदेशक (Director of Inquiry) की नियुक्ति नहीं की है।

प्रमुख बिंदु

जाँच निदेशक के विषय में:

- लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 के अनुसार, एक जाँच निदेशक होगा, जो केंद्र सरकार के संयुक्त सचिव के पद से नीचे का नहीं होगा।
- लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 की धारा 20 (1) (बी) के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार, लोक सेवकों के संबंध में शिकायतों को लोकपाल द्वारा प्रारंभिक जाँच के लिये केंद्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission) को भेजा जाता है।
- जाँच निदेशक की नियुक्ति न करना भारत में मज़बूत लोकपाल के लिये राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी को दर्शाता है।

लोकपाल के विषय में:

- लोकपाल एक भ्रष्टाचार विरोधी प्राधिकरण है जो जनहित का प्रतिनिधित्व करता है।
  - भारत भ्रष्टाचार के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन का एक हस्ताक्षरकर्त्ता है।
- भारत में लोकपाल की अवधारणा स्वीडन से ली गई है।
- लोकपाल (सार्वजनिक पदाधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार की शिकायतों की जाँच करने वाली सर्वोच्च संस्था) मार्च 2019 में अपने अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के साथ अस्तित्व में आया।
- भारत के पहले प्रशासनिक सुधार आयोग (1966- 1970) ने नागरिकों की शिकायतों के निवारण के लिये 'लोकपाल' और 'लोकायुक्त' के रूप में नामित दो विशेष प्राधिकरणों की स्थापना की सिफारिश की थी।
  - भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर लोकपाल, जबकि राज्य स्तर पर लोकायुक्त अधिकृत है।
- भ्रष्टाचार के मामलों में लोकपाल के अधिकार क्षेत्र में सभी संसद सदस्य और केंद्र सरकार के कर्मचारी आते हैं।
- इसके अलावा लोकपाल केंद्र सरकार द्वारा पूर्ण या आंशिक रूप से वित्तपोषित या उसके द्वारा नियंत्रित संस्था के किसी भी सदस्य के संबंध में भ्रष्टाचार विरोधी शिकायतों की भी जाँच कर सकता है।
- वर्तमान में न्यायमूर्ति पिनाकी चंद्र घोष (Justice Pinaki Chandra Ghose) लोकपाल के अध्यक्ष हैं।
- लोकपाल एक बहु-सदस्यीय निकाय है जिसमें एक अध्यक्ष और अधिकतम 8 सदस्य होते हैं।

लोकपाल से संबंधित मुद्दे:

- लोकपाल राजनीतिक प्रभाव से मुक्त नहीं है क्योंकि लोकपाल की नियुक्ति समिति में भी राजनीतिक दलों के सदस्य शामिल होते हैं।
  - लोकपाल की नियुक्ति हेतु चयन समिति प्रधानमंत्री से मिलकर बनी होती है जो कि समिति का अध्यक्ष होता है इसके अलावा इस समिति में लोकसभा अध्यक्ष, लोकसभा में विपक्ष का नेता, भारत का मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामित एक न्यायाधीश तथा एक प्रख्यात न्यायविद शामिल होते हैं ।
- लोकपाल की नियुक्ति में हेरफेर की संभावना बनी रहती है क्योंकि नियुक्ति हेतु 'प्रतिष्ठित न्यायविद' या 'ईमानदार व्यक्ति'के लिये कोई निश्चित मानदंड निर्धारित नहीं है।
- सबसे बड़ी कमी न्यायपालिका को लोकपाल के दायरे से बाहर रखना है।
- लोकपाल को संवैधानिक सुरक्षा प्रदान नहीं है तथा लोकपाल के खिलाफ अपील करने हेतु पर्याप्त प्रावधान भी नहीं हैं।
- भ्रष्टाचार के खिलाफ उल्लेखित अपराध का आरोप लगाने के दिन से सात वर्ष की अवधि के बाद शिकायत दर्ज नहीं की जा सकती है।

चुनावी ट्रस्ट योजना, 2013

चर्चा में क्यों ?

पहली बार चुनावी ट्रस्ट (चुनावी ट्रस्ट योजना, 2013 के तहत) ने चुनावी बॉण्ड के माध्यम से दान की घोषणा की है, हालाँकि चुनावी बॉण्ड योजना के तहत गारंटीकृत नाम न छापने का हवाला देते हुए धन प्राप्त करने वाले राजनीतिक दलों के नामों का खुलासा नहीं किया गया है।

- एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR) के अनुसार, यह प्रथा 'इलेक्टोरल ट्रस्ट्स स्कीम, 2013 और आयकर नियम, 1962 की भावना के विरुद्ध है, जो ट्रस्टों के लिये योगदान देने वाले के बारे में प्रत्येक विवरण प्रस्तुत करना अनिवार्य बनाते हैं।
  - यदि चुनावी ट्रस्ट, बॉण्ड के माध्यम से दान करने की इस प्रथा को अपनाना शुरू कर देते हैं, तो यह पूर्णत: अनुचित होगा और इसमें तमाम गलत प्रथाएँ जैसे- पूर्ण गुमनामी, अनियंत्रित और असीमित धन, काले धन का मुक्त प्रवाह, भ्रष्टाचार, विदेशी धन, कॉर्पोरेट दान तथा हितों का टकराव आदि शामिल होंगी।

प्रमुख बिंदु

चुनावी ट्रस्ट योजना के बारे में

- चुनावी ट्रस्ट भारत में गठित एक गैर-लाभकारी संगठन है जो किसी भी व्यक्ति से व्यवस्थित रूप से योगदान प्राप्त करने का कार्य करता है।
- चुनावी ट्रस्ट भारत में अपेक्षाकृत नई अवधारणा है और यह देश में तेज़ी से हो रहे चुनावी पुनर्गठन का हिस्सा है।
- चुनावी ट्रस्ट योजना, 2013 को केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (CBDT) द्वारा अधिसूचित किया गया था।
  - चुनावी ट्रस्ट से संबंधित प्रावधान आयकर अधिनियम, 1961 और आयकर नियम, 1962 के तहत शामिल हैं।

उद्देश्य

- यह एक चुनावी ट्रस्ट को अनुमोदन प्रदान करने हेतु प्रक्रिया निर्धारित करता है, जो स्वैच्छिक योगदान प्राप्त करते हैं तथा इसे राजनीतिक दलों को वितरित करते हैं।
- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 29A के तहत पंजीकृत एक राजनीतिक दल इस योजना के तहत पात्र राजनीतिक दल होगा और एक चुनावी ट्रस्ट केवल पात्र राजनीतिक दलों को ही धन वितरित करेगा।

ट्रस्ट के अनुमोदन के लिये मानदंड

- एक चुनावी ट्रस्ट को अनुमोदित किया जाएगा यदि वह निम्नलिखित शर्तों को पूरा करता है:-
  - कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 के प्रयोजनों के लिये पंजीकृत कंपनी।
  - चुनावी ट्रस्ट का उद्देश्य कोई लाभ अर्जित करना अथवा अपने सदस्यों या योगदानकर्त्ताओं को कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभ देना नहीं होना चाहिये।

चुनावी ट्रस्टों में योगदान:

- स्वैच्छिक योगदान प्राप्त कर सकते हैं:
  - एक ऐसे व्यक्ति से जो भारत का नागरिक है;
  - ऐसी कंपनी से जो भारत में पंजीकृत है;
  - किसी फर्म या भारत में निवास कर रहे एक हिंदू अविभाजित परिवार या व्यक्तियों के एक संघ या व्यक्तियों के निकाय से।
- योगदान स्वीकार नहीं कर सकते:
  - ऐसे व्यक्ति से जो भारत का नागरिक नहीं है।
  - किसी अन्य चुनावी ट्रस्ट से जो कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 के तहत एक कंपनी के रूप में पंजीकृत है और चुनावी ट्रस्ट योजना, 2013 के तहत चुनावी ट्रस्ट के रूप में अनुमोदित है;
  - कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 में परिभाषित किसी सरकारी कंपनी से;
  - किसी विदेशी स्रोत से, जैसा कि विदेशी अंशदान (विनियमन) अधिनियम, 2010 की धारा 2 में परिभाषित किया गया है।
- एक चुनावी ट्रस्ट केवल चेक, डिमांड ड्राफ्ट या बैंक खाते के माध्यम से हस्तांतरण द्वारा किये गए योगदान को ही स्वीकार कर सकता है।

अन्य बिंदु:

- चुनावी/इलेक्टोरल ट्रस्ट एक वर्ष में प्राप्त कुल योगदान का 5% तक खर्च कर सकता है, जिसकी कुल सीमा निगमन के पहले वर्ष में 5 लाख रुपए और बाद के वर्षों में 3 लाख रुपए होगी।
- ट्रस्ट पात्र राजनीतिक दल से एक रसीद प्राप्त करता है जिसमें राजनीतिक दल का नाम, उसकी स्थायी खाता संख्या आदि का उल्लेख होता है।
- ट्रस्ट को अपनी प्राप्तियों, वितरण एवं व्यय के संबंध में ऐसी लेखा बही और अन्य दस्तावेज़ों को रखना तथा उनका अनुरक्षण करना आवश्यक है।

योजना का महत्त्व:

- चुनावी ट्रस्टों को कॉरपोरेट संस्थाओं द्वारा राजनीतिक दलों को उनके चुनाव संबंधी खर्चों के लिये उपलब्ध कराए गए फंड में अधिक पारदर्शिता लाने के लिये अभिकल्पित किया गया है।
- निर्वाचन आयोग ने पारदर्शिता के हित में चुनावी ट्रस्टों द्वारा प्राप्त और राजनीतिक दलों को उनके द्वारा वितरित किये गए योगदान के विवरण संबंधी वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिये चुनावी ट्रस्टों की योगदान रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु दिशा-निर्देश भी जारी किये थे।

चुनावी बॉण्ड

- चुनावी बॉण्ड राजनीतिक दलों को दान देने हेतु एक वित्तीय साधन है।
- चुनावी बॉण्ड बिना किसी अधिकतम सीमा के 1,000 रुपए, 10,000 रुपए, 1 लाख रुपए, 10 लाख रुपए और 1 करोड़ रुपए के गुणकों में जारी किये जाते हैं।
- भारतीय स्टेट बैंक इन बॉण्डों को जारी करने और भुनाने (En-cash) के लिये अधिकृत बैंक है, ये बॉण्ड जारी करने की तारीख से पंद्रह दिनों तक वैध रहते हैं।
- यह बॉण्ड एक पंजीकृत राजनीतिक पार्टी के निर्दिष्ट खाते में प्रतिदेय होता है।
- बॉण्ड किसी भी व्यक्ति (जो भारत का नागरिक है) द्वारा जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अक्तूबर के महीनों में प्रत्येक दस दिनों की अवधि हेतु खरीद के लिये उपलब्ध होते हैं, जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।
  - एक व्यक्ति या तो अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ संयुक्त रूप से बॉण्ड खरीद सकता है।
  - बॉण्ड पर दाता के नाम का उल्लेख नहीं किया जाता है।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त

चर्चा में क्यों?

हाल ही में राष्ट्रपति ने चुनाव आयुक्त सुशील चंद्रा को मुख्य निर्वाचन आयुक्त (Chief Election Commissioner- CEC) नियुक्त किया।

- उन्होंने सुनील अरोड़ा का स्थान लिया है।

प्रमुख बिंदु

भारत निर्वाचन आयोग के बारे में:

- भारत निर्वाचन आयोग (Election Commission of India- ECI) भारत में संघ और राज्य चुनाव प्रक्रियाओं के संचालन के लिये एक स्वायत्त संवैधानिक प्राधिकरण (Constitutional Authority) है।

- इसकी स्थापना 25 जनवरी, 1950 को संविधान के अनुसार की गई थी (जिसे राष्ट्रीय मतदाता दिवस के रूप में मनाया जाता है)। आयोग का सचिवालय नई दिल्ली में स्थित है।

- यह भारत में लोकसभा, राज्यसभा और राज्य विधानसभाओं, देश के राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के चुनावों का संचालन करता है।
  - इसका राज्यों में पंचायतों और नगरपालिकाओं के चुनावों से कोई संबंध नहीं है। भारत का संविधान में इसके लिये एक अलग राज्य निर्वाचन आयोग (State Election Commission) का प्रावधान है।

संवैधानिक प्रावधान:

- भारतीय संविधान का भाग XV (अनुच्छेद 324-329): यह चुनावों से संबंधित हैं, और यह इनसे संबंधित मामलों के लिये एक अलग आयोग की स्थापना करता है।
- अनुच्छेद 324: निर्वाचन आयोग में चुनावों के संदर्भ में निहित दायित्व हैं- अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण।
- अनुच्छेद 325: धर्म, जाति या लिंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति विशेष को मतदाता सूची में शामिल न करने और इनके आधार पर मतदान के लिये अयोग्य नहीं ठहराने का प्रावधान।
- अनुच्छेद 326: लोकसभा एवं प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिये निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा।
- अनुच्छेद 327: विधायिका द्वारा चुनाव के संबंध में संसद में कानून बनाने की शक्ति।
- अनुच्छेद 328: किसी राज्य के विधानमंडल को उनके चुनाव के लिये कानून बनाने की शक्ति।
- अनुच्छेद 329: निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन।

ECI की संरचना:

- निर्वाचन आयोग में मूलत: केवल एक चुनाव आयुक्त का प्रावधान था, लेकिन राष्ट्रपति की एक अधिसूचना के ज़रिये 16 अक्तूबर, 1989 को इसे तीन सदस्यीय बना दिया गया।
- इसके बाद कुछ समय के लिये इसे एक सदस्यीय आयोग बना दिया गया और 1 अक्तूबर, 1993 को इसका तीन सदस्यीय आयोग वाला स्वरूप फिर से बहाल कर दिया गया। तब से निर्वाचन आयोग में एक मुख्य चुनाव आयुक्त और दो चुनाव आयुक्त होते हैं।
  - मुख्य निर्वाचन अधिकारी IAS रैंक का अधिकारी होता है।

आयुक्तों की नियुक्ति और कार्यकाल:

- मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
- इनका कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष की आयु (दोनों में से जो भी पहले हो) तक होता है।
- इन्हें भारत के सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court- SC) के न्यायाधीशों के समकक्ष दर्जा प्राप्त होता है और समान वेतन एवं भत्ते मिलते हैं।

निष्कासन:

- वे कभी भी इस्तीफा दे सकते हैं या उन्हें उनके कार्यकाल की समाप्ति से पहले भी हटाया जा सकता है।
- मुख्य चुनाव आयुक्त को संसद द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया के समान ही पद से हटाया जा सकता है।

निष्कासन की प्रक्रिया

- उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, मुख्य चुनाव आयुक्त, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General- CAG) को दुर्व्यवहार या पद के दुरुपयोग का आरोप सिद्ध होने पर या अक्षमता के आधार पर संसद द्वारा अपनाए गए प्रस्ताव के माध्यम से ही पद से हटाया जा सकता है।
- निष्कासन के लिये दो-तिहाई सदस्यों के विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है और इसके लिये सदन के कुल सदस्यों का 50 प्रतिशत से अधिक मतदान होना चाहिये।
- न्यायाधीशों, CAG, CEC को हटाने के लिये संविधान में 'महाभियोग' शब्द का उपयोग नहीं किया गया है।
- 'महाभियोग' शब्द का प्रयोग केवल राष्ट्रपति को हटाने के लिये किया जाता है जिसके लिये संसद के दोनों सदनों में उपस्थित सदस्यों की कुल संख्या के दो-तिहाई सदस्यों के विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है और यह प्रक्रिया किसी अन्य मामले में नहीं अपनाई जाती।

सीमा:

- संविधान ने निर्वाचन आयोग के सदस्यों की योग्यता (कानूनी, शैक्षिक, प्रशासनिक या न्यायिक) निर्धारित नहीं की है।
- संविधान ने चुनाव आयोग के सदस्यों का कार्यकाल निर्दिष्ट नहीं किया है।
- संविधान ने सेवानिवृत्त चुनाव आयुक्तों को सरकार द्वारा किसी और नियुक्ति से वंचित नहीं किया है।

ECI की शक्तियाँ और कार्य:

- प्रशासनिक:
- संसद के परिसीमन आयोग अधिनियम के आधार पर पूरे देश में निर्वाचन क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण करना।

- समय-समय पर मतदाता सूची तैयार करना और सभी पात्र मतदाताओं का पंजीकरण करना।
- राजनीतिक दलों को मान्यता देने और उन्हें चुनाव चिन्ह आवंटित करने के लिये।
- यह राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के लिये चुनाव में 'आदर्श आचार संहिता' जारी करता है, ताकि कोई अनुचित कार्य न करे या सत्ता में मौजूद लोगों द्वारा शक्तियों का दुरुपयोग न किया जाए।
- सलाहकार क्षेत्राधिकार और अर्द्ध-न्यायिक कार्य:
- निर्वाचन के बाद अयोग्य ठहराए जाने के मामले में आयोग के पास संसद और राज्य विधानसभाओं के सदस्यों की बैठक हेतु सलाहकार क्षेत्राधिकार भी है।
- ऐसे सभी मामलों में आयोग की राय राष्ट्रपति के लिये बाध्यकारी है, किंतु ऐसे मामले पर राज्यपाल अपनी राय दे सकता है।
- आयोग के पास किसी उम्मीदवार को अयोग्य घोषित करने की शक्ति है, जो समय के भीतर और कानून द्वारा निर्धारित तरीके से अपने चुनावी खर्चों का लेखा-जोखा करने में विफल रहा है।

केंद्रीय सतर्कता आयोग

चर्चा में क्यों ?

हाल ही में केंद्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission- CVC) द्वारा सरकारी संगठनों की सतर्कता इकाइयों में अधिकारियों के स्थानांतरण और पोस्टिंग से संबंधित दिशा-निर्देशों को संशोधित करते हुए अधिकारियों के कार्यकाल को किसी एक स्थान पर तीन वर्ष तक सीमित कर दिया है।

- राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने हेतु तीन प्रमुख संस्थाएँहैं- लोकपाल, केंद्रीय सतर्कता आयोग और केंद्रीय जाँच ब्यूरो (CBI)।

प्रमुख बिंदु:

दिशा-निर्देश:

- निचले स्तर के अधिकारियों सहित सतर्कता इकाई में कर्मियों का कार्यकाल एक स्थान पर केवल तीन वर्ष तक सीमित होना चाहिये।
  - हालाँकि किसी अन्य स्थान पर पोस्टिंग के साथ कार्यकाल को तीन वर्षों तक और बढ़ाया जा सकता है।
- जिन कर्मचारियों/कार्मिकों द्वारा एक ही स्थान पर सतर्कता इकाइयों में पाँच वर्ष से अधिक समय पूरा कर लिया है उन्हें सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर स्थानांतरित किया जाना चाहिये।
- किसी एक संगठन की सतर्कता इकाई से स्थानांतरण के बाद एक व्यक्ति को पुन: स्थानांतरित करने से पूर्व कम-से-कम तीन वर्ष की अवधि का अनिवार्य कार्यकाल दिया जाएगा।

कारण:

- यह देखा गया है कि एक संवेदनशील जगह पर किसी अधिकारी के लंबे समय तक रहने से अधिकारी में उस स्थान के प्रति एक लगाव विकसित होने की संभावना होती है, इसके अलावा अनावश्यक शिकायतें/आरोप आदि बढ़ जाते हैं।
  - इस दृष्टिकोण में पारदर्शिता, निष्पक्षता और एकरूपता सुनिश्चित करना आवश्यक है।

केंद्रीय सतर्कता आयोग

केंद्रीय सतर्कता आयोग के बारे में:

- केंद्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission-CVC) एक शीर्षस्थ सतर्कता संस्थान है जो किसी भी कार्यकारी प्राधिकारी के नियंत्रण से मुक्त है तथा केंद्रीय सरकार के अंतर्गत सभी सतर्कता गतिविधियों की निगरानी करता है।
- यह केंद्रीय सरकारी संगठनों में विभिन्न प्राधिकारियों को उनके सतर्कता कार्यों की योजना बनाने, उनके निष्पादन, समीक्षा एवं सुधार करने के संबंध में सलाह देता है।

पृष्ठभूमि:

- वर्ष 1964 में के. संथानम की अध्यक्षता वाली भ्रष्टाचार निरोधक समिति (Committee on Prevention of Corruption) की सिफारिशों पर सरकार द्वारा CVC की स्थापना की गई थी।
- वर्ष 2003 में केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम (The Central Vigilance Commission Act) द्वारा आयोग के सांविधिक दर्जे की पुष्टि कर दी गई।
- यह एक स्वतंत्र निकाय है जो केवल संसद के प्रति ज़िम्मेदार है।
  - यह अपनी रिपोर्ट भारत के राष्ट्रपति को सौंपता है।

कार्य:

- दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान (Delhi Special Police Establishment- CBI) के कार्य CVC की निगरानी एवं नियंत्रण में होते हैं क्योंकि यह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत अपराधों की जाँच से संबंधित है।
  - CVC भ्रष्टाचार या कार्यालय के दुरुपयोग से संबंधित शिकायतें प्राप्त होने पर उचित कार्रवाई की सिफारिश करता है।
  - निम्नलिखित संस्थाएँ, निकाय या व्यक्ति CVC के पास अपनी शिकायत दर्ज करा सकते हैं: केंद्र सरकार, लोकपाल, सूचना प्रदाता/मुखबिर/सचेतक (Whistle Blower)

- CVC की अपनी कोई अन्वेषण एजेंसी नहीं है। यह CBI तथा केंद्रीय संगठनों के मुख्य सतर्कता अधिकारियों (Chief Vigilance Officers- CVO) पर निर्भर है जबकि दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 के तहत CBI की अपनी अन्वेषण विंग है।

संरचना:

- यह एक बहु-सदस्यीय आयोग है जिसमें एक केंद्रीय सतर्कता आयुक्त (अध्यक्ष) और अधिकतम दो सतर्कता आयुक्त (सदस्य) शामिल होते हैं।

आयुक्तों की नियुक्ति:

- केंद्रीय सतर्कता आयुक्त और सतर्कता आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा एक समिति की सिफारिश पर की जाती है जिसमें प्रधानमंत्री (अध्यक्ष), गृह मंत्री (सदस्य) और लोकसभा में विपक्ष का नेता (सदस्य) शामिल होता है।

कार्यकाल:

- इनका कार्यकाल 4 वर्ष अथवा 65 वर्ष (जो भी पहले हो) तक होता है।

पदच्युत:

- राष्ट्रपति केंद्रीय सतर्कता आयुक्त या अन्य किसी भी सतर्कता आयुक्त को उसके पद से किसी भी समय निम्नलिखित परिस्थितियों में हटा सकता है:
- यदि वह दिवालिया घोषित हो, अथवा
- यदि वह नैतिक आधार पर किसी अपराध में दोषी पाया गया हो, अथवा
- यदि वह अपने कार्यकाल में कार्यक्षेत्र से बाहर किसी प्रकार का लाभ का पद ग्रहण करता हो, अथवा
- यदि वह मानसिक या शारीरिक कारणों से कार्य करने में असमर्थ हो, अथवा
- यदि वह आर्थिक या इस प्रकार के कोई अन्य लाभ प्राप्त करता हो जिससे कि आयोग के कार्यों में वह पूर्वग्रह युक्त हो।

इसके अलावा केंद्रीय सतर्कता आयुक्त या अन्य किसी भी सतर्कता आयुक्त को दुराचार व अक्षमता के आधार पर भी पद से हटाया जा सकता है, अगर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन्हें जाँच में दोषी पाया जाता है।

- वे राष्ट्रपति को पत्र लिखकर भी अपने पद से इस्तीफा दे सकते हैं।